UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182382

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 T91A Accession No. P. G. H3233

Author तुलसी आचार्य

Title अग्निपरीक्षा 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

अग्नि-परीक्षा

आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह के अभिनन्दन में

अग्नि-परीक्षा

कवयिता
आचार्य श्री तुलसी

सम्पादक
श्रमण श्री सागरमलजी : मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध सम्पादक
श्री सोहनलाल बाफणा

Widya Prakashan
V.P.
Begum Bazar

१९६१
आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली · जालन्धर · जयपुर · मेरठ · चंडीगढ़

AGNI-PAREEKSHA

by

Acharya Shri Tulsi

Rs. 6·50

[श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता १ के सौजन्य से प्राप्त]

COPYRIGHT 1961 © ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

हौज खास, नई दिल्ली

चौड़ा रास्ता, जयपुर

माई हीरा गेट, जालन्धर

बेगमपुल रोड, मेरठ

विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ

प्रथम संस्करण : १९६१

मूल्य : रुपए ६.५०

मुद्रक

सत्यपाल धवन

दा सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस

८०-डी, कमला नगर, दिल्ली-६

सम्पादकीय

राम-कथा जैन, बौद्ध और वैदिक इन सभी परम्पराओ मे रूपान्तर से मान्य रही है। सभी परम्पराओ के विद्वानो ने इस कथा-वस्तु को पुराणो, काव्यो व नाटको के रूप में बान्धा है। रचयिताओ ने युग-युग की भाषा मे राम और सीता की यशो गाथा गाई है। प्राक्तन काल से लेकर वर्तमान युग तक के राम-साहित्य में जैन विद्वानों की उल्लेखनीय देन रही है।

प्राकृत भाषा में

विक्रम संवत् ६० के लगभग नागिल वशीय स्थविर आचार्य राहुप्रभ के शिष्य विमलसूरि ने प्राकृत भाषा मे पउम चरिउ, (सं० पद्मचरित्र अर्थात् राम चरित्र) की रचना की। ६००० आर्या परिमित यह ग्रन्थ जैन रामायणो मे सबसे प्राचीन है और भाव-भाषा की दृष्टि से भी बहुत श्लाघ्य है। इसका सम्पादन जर्मन विद्वान् डा० याकोबी ने कुशलता पूर्वक किया है। इस ग्रन्थ पर नाना शोध कार्य भी हो चुके है। श्री नाथूराम प्रेमी की धारणा से यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायो की उत्पत्ति से पूर्व का है; क्योकि इसमे कुछ स्थल दिगम्बर धारणाओ के और कुछ स्थल श्वेताम्बर धारणाओ के अनुकूल और प्रतिकूल पडते है। यह ग्रन्थ वि० स० ६० मे लिखा गया है जबकि उक्त सम्प्रदायो का सम्भावित उत्पत्ति काल वि० स० १३६ है।

किसी एक विद्वान् ने ३४०० श्लोक परिमाण 'सीयाचरिय' भी प्राकृत मे लिखा है। ग्रन्थ-कर्ता और रचना-काल का अब तक पता नही चला है, पर ग्रन्थ प्राचीन ही माना गया है। इसी प्रकार 'वसुदेव हिण्डी' 'चउपण्ण महापुरिस चरियं' 'कहावली' आदि प्राकृत ग्रन्थों में भी रचयिता आचार्यो ने राम-कथा पर यथोचित प्रकाश डाला है।

अपभ्रंश भाषा में

अपभ्रंश भाषा के प्रचलन काल मे जैन विद्वानो ने राम कथा को अपभ्रंश भाषा में गूंथा। महावैयाकरण और महाकवि स्वयंभू ने बारह हजार श्लोक परिमाण 'पउम चरिउ' रचा। उनके विद्वान् पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने ग्रन्थ का संवर्धन किया। रचना-काल ग्रन्थ मे अंकित नही है, पर वह अन्य आधारों से वि० सं० ७३४ और ८३० के बीच का आंका जाता है।[1] हिन्दी साहित्य में भी इस ग्रन्थ पर शोधपूर्ण

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २११

ग्रौर ममीक्षात्मक दृष्टि से लिखे गए हैं। ग्रन्थ कुछ एक मौलिक विशेषताए रखता है।

राम-कथा पर प्रकाश डालनेवाला प्राकृत भाषा का दूसरा महाग्रन्थ 'तिसट्ठि महापुरिसगुणालंकारु' है। उसमें त्रेसठशलाकापुरुषों के चरित्र है। यह आदिपुराण और उत्तरपुराण इन दो खण्डों में विभक्त है। आदिपुराण में तीर्थंकर ऋषभ देव का और उत्तरपुराण मे तेवीस तीर्थंकर और अन्य महापुरुषों का काव्यात्मक जीवन चरित्र है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण (रामायण) का भी प्रमुख स्थान है। यह इस नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी बरता जाता है। बीस हजार श्लोक परिमित उक्त ग्रन्थ के रचयिता कविवर पुष्पदन्त है और इसकी रचना छः वर्षों के अथक श्रम से विक्रम सवत् ९०३ में सम्पन्न हुई है। इनकी रामायण अन्य जैन रामायणों से बहुत सारे मौलिक भेद रखती है। इस जैन रामायण मे महासती सीता मदोदरी से उत्पन्न रावण की पुत्री बताई गई है। साहित्यिक दृष्टि से वह ग्रन्थ बहुत ही उच्च माना गया है।

संस्कृत में

सस्कृत भाषा मे भी जैन कविवरो की लेखिनी अगाध रूप से चली। कविवर रविषेण ने प्राकृत के पउमचरिय का पल्लवित अवतरण संस्कृत भाषा में कर दिया। पउम चरिय दश सहस्र श्लोक परिमाण है। रविषेण का पद्मचरित्र अठारह सहस्र श्लोक परिमाण है। पउमचरिय की रचना आर्यो छदो में है और पद्मचरित्र की रचना अनुष्टुप् छन्दों मे। इस ग्रन्थ का प्रचलित नाम पद्मपुराण है और जैन रामायणो मे यह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसकी रचना वि० स० ७३३ के लगभग हुई है।

आचार्य हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र बत्तीस हजार श्लोक परिमाण है। इस ग्रथ के सातवें पर्व मे लगभग पैंतीमसौ श्लोकों मे राम-कथा का वर्णन किया गया है। सचमुच ही आचार्य हेमचन्द्र का यह ग्रन्थ एक सुविस्तृत पुराण भी है और महाकाव्य भी।

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने भी विमलाचार्य के पउमचरिय के आधार पर संस्कृत भाषा मे पद्मपुराण की रचना की है। और भी अनेकानेक काव्य व चरित्र राम-कथा के विषय मे जैन मनीषियों ने रचे है।

कन्नड़ भाषा में

कन्नड दक्षिण की एक प्रमुख भाषा है। किसी युग मे कर्नाटक मे जैन धर्म का बहुत विस्तार था। कन्नड भाषा के साहित्य का उद्गम ही विशेषतः जैन मनीषियो की लेखिनी से होता है। इस भाषा मे भी नाना जैन विद्वानो ने राम-चरित्र रचे है। पम्प, पोन्न और रत्न अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवियो मे थे। ये तीनों ही जैन थे।

पम्प और रत्न ने महाभारत की कथा पर महाकाव्य रचे और पोन्न ने राम-कथा पर भुवनैक्य रामाभ्युदय नामक काव्य रचा। हालांकि वर्तमान में यह काव्य अनुपलब्ध है, पर अन्य अनेक ग्रन्थों मे इसकी गौरव-गाथा मिलती है।

जैन कवि श्री नागचन्द्र ने रविषेण और विमलसूरी की रामायण के आधार पर कन्नड मे रामचन्द्र चरित्र पुराण नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे जैन मुनिश्री कुमुदेन्दु ने कुमुदेन्दु रामायण लिखी। चौदहवी और सोलहवी शताब्दी के बीच वैदिक पंडितों ने भी रामायणें लिखीं।

राजस्थानी भाषा में

राजस्थानी भाषा मे जैनेतर विद्वानों द्वारा रचित राम-कथा-ग्रन्थो का इतिहास जहा सतरहवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, वहा जैन विद्वानों व मुनिजनो द्वारा रचित रामायण ग्रन्थ का इतिहास सोलहवी शताब्दी के आदि चरण से ही प्रारम्भ हो जाता है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने अपने एक लेख मे श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन विद्वानों द्वारा रचित रामयशोरसायन प्रभृति २२ ग्रन्थो का परिचय दिया है।*

हिन्दी भाषा की ओर

हिन्दी भाषा का युग आया तो जैन आचार्यो व मुनियो की लेखिनी राम-कथा को लेकर हिन्दी भाषा की ओर मुड़ चली है। अनेको ग्रन्थ अब तक रचे जा चुके हैं। आधुनिक भाव भाषा की दृष्टि से महामहिम आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित यह 'अग्नि-परीक्षा' ग्रन्थ अपनी प्रकार का एक है। सचमुच ही यह एक प्रगीत काव्य है। इसमे लका-विजय से सीता-परित्याग और उसकी अग्नि-परीक्षा तक का सजीव चित्रण किया गया है।

जैन और वैदिक रामायणों में कथा-भेद

महाकवि तुलसी के रामचरित मानस मे लका मे ही पुर्नमिलन के अवसर पर सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। परीक्षित सीता भी रजक के ताने मात्र से पुन लक्ष्मण के द्वारा वन मे छुडवा दी जाती है। किन्तु प्रस्तुत अग्नि-परीक्षा खण्ड काव्य मे लंका-विजय के पश्चात् सीता सानन्द राम-लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटती है। कालान्तर से राम लोकापवाद को और रजक के ताने को सुनकर कृतान्तमुख सेनापति के हाथो पुनः निर्जन वन मे छुडवा देते है। लवण और अंकुश (लवकुश) मातृ-प्रतिशोध के लिए अनेक राजाओ की सेना के साथ अयोध्या पर चढाई करते है। युद्ध के अन्त मे सीता का परिचय खुलता है। राम उसे पुनः अयोध्या लाते हैं और उसकी अग्नि-परीक्षा करवाते है।

---

* राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८४०

यह कथा-भेद आचार्य श्री तुलसी ने स्वय नही किया है, परन्तु जैन और वैदिक रामायणो का यह परम्परागत भेद है। दोनो परम्पराओं की राम-कथा में आदि से अन्त तक एकरूपता भी है तो आदि से अन्त तक अनेकरूपता भी। सभी पात्रों के धार्मिक आधार तो बदल ही जाते है, साथ-साथ उनके अवान्तर घटना-प्रसंग भी। दोनो परम्पराओ की राम-कथा का तुलनात्मक अध्ययन अवश्य एक रोचक और ज्ञानवर्धक विषय बनता है, परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे वह विस्तार क्षम्य नही है। दोनो परम्पराओ की कथा मे उल्लेखनीय भेद तो यह है कि वैदिक परम्परा मे क्रमश· राम को ब्रह्म का स्वरूप दे दिया जाता है और जैन परम्परा अवतारवाद की हिमायती नही है. अत. उसमे प्राकृत रामायणो से ले कर वर्तमान की रामायणों तक भी राम एक पुरुष, महापुरुष व वासुदेव लक्ष्मण के ज्येष्ठ बन्धु बलदेव ही माने जाते है। वे महान् राजा थे, इसलिये अर्चनीय नही, अपितु जीवन के अन्त मे उन्होने मुनित्व धर्म स्वीकार किया और सर्वज्ञ होकर मोक्षधाम पहुचे, इसलिये वे जैन जगत् के अर्चनीय और उपासनीय है। वैदिक परम्परा मे राम-कथा का आदि ग्रन्थ बाल्मीकि रामायण है। उसके बाद ही यह कथा महाभारत व अन्य पुराण ग्रन्थों मे आई, ऐसा माना जाता है। बाल्मीकि ने राम को एक महामानव के रूप मे ही प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते है। उनमें ईश्वरता का आरोप कवि ने कही नही होने दिया है। आध्यात्म रामायण मे राम के ब्रह्मरूप की झाकी मिलती है और भक्त कवि तुलसी के राम चरित मानस मे तो 'सिया राम मय सब जग जानि' का आदि से अन्त तक निर्वाह मिलता है। आज के बुद्धि-प्रधान युग मे जैन रामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा मे अधिक प्रशस्त मानी गई है। वहा अधिकाश घटनाएं स्वाभाविक और सम्भव रूप मे मिलती है। उदाहरणार्थ—वैदिक रामायणो मे रावण के दश मुख माने गये है, इसीलिए दशकन्धर, दशानन, दशमुख आदि नाम उसके प्रचलित हुए है, ऐसा कहा जाता है। जैन रामायणो में रावण के दशानन कहलाने का वर्णन इस प्रकार है—बचपन मे रावण एक बार खेलते-खेलते भण्डार मे पहुच गया। वहा उसे तोयदवाहन का हार मिल गया। उसमे नौ मणियां जड़ी हुई थी, जिनमें से प्रत्येक मणि मे पहनने वाले का मुख प्रतिबिम्बित होता था। रावण ने बाल-लीला मे उसे उठा कर पहन लिया और तभी से लोग उसे दशानन कहने लगे।[1] कुछ एक जैन रामायणो के प्रारम्भ मे ही वैदिक रामायणो मे कही गई अस्वाभाविक बातो की आलोचना की गई है। स्वयभूकृत पउमचरिउ मे कोणिक भगवान् महावीर से राम-

---

१. परिहिउ णव-मुहइं समुट्ठियइं। ण गहबिम्बइं सु-परिट्ठिइं।
पेक्खेप्पिणु ताइं दहाणणई थिर-तारइं तरलइं लोयणइं।
ते दहमुहु दहसिरु जणेण किउ पंचाणणु जेम पसिद्धि गउ॥

—१।६।४

कथा कहने का अनुरोध करते है और जिज्ञासा के रूप में वैदिक परम्परा मे चलनेवाली असंगतियों को भी प्रस्तुत करते है। उनमें मुख्य जिज्ञासाएं है---रावण के दशमुख और बीस हाथ कैसे है? कुम्भकरण छः महीने तक कैसे सोता था और करोडो महिष कैसे खा जाता था? कूर्म ने पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया तो वह स्वय कहा था? रावण की पत्नी मन्दोदरी को विभीषण ने अपनी पत्नी कैसे बना लिया आदि।[1] इस प्रकार राम की अवतारवादिता और विविध अस्वाभाविकताओ को लेकर जैन और वैदिक परम्परा की राम-कथा मे बहुत सारे मौलिक भेद आ जाते है।

वैदिक रामायणों में कथा-भेद

रामायण का कथा-भेद एकमात्र परम्परा-भेद पर ही आधारित है, ऐसी बात नही है। एक-एक परम्परा मे भी राम-कथा की विभिन्न धाराए है। प्रत्येक रचयिता प्रायः कुछ न कुछ अपनी ओर से जोडता ही है। कवि इसे अपना मौलिक अधिकार भी मानता है। सीता को रावण किस प्रकार उठा कर ले गया, इस विषय मे कवियों ने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना युक्तिया काम मे ली। सीता सती थी। स्वेच्छा से ही रावण के साथ जाने के लिए चरण नही बढा सकती थी। रावण बलात् उसे उठाकर ले जाता है, तो पर-पुरुष के स्पर्श-दोष से वह दूषित होती है। इस सम्बन्ध मे सबसे निराली उक्ति यह है कि सीता जिस झोंपड़ी मे रहती थी, रावण पृथ्वी खण्ड के साथ उस झोपडी को ज्यो का त्यो उठाकर ले गया।

पणवेप्पिणु जिणु तग्गय-मणेण। पुणु पुच्छिउ गोतमसामि तेण॥
परमेसर पर-सासणेहिं सुव्वय विवरेरी।
कहे जिण-सासणे केम थिय कह राहव-केरी॥
जगे लोएहिं ढक्करिवन्तएहिं। उप्पाइउ भन्तिउ भन्तएहिं॥
जइ कुम्मे धरियउ धरणि-वीढु। तो कुम्मु पडन्तउ केण वीढु॥
जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ॥
अण्णु वि खरदूसरण-समरे देव। पहु जुज्झइ सिच्चु कॅव॥
किह तियमइ-कारणे कविवरेण। वाइज्जइ वालि सहोयरेण॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहन्ति। बन्धेवि मयरहरु समुत्तरन्ति॥
किह रावणु दहमुहु वीस हत्थु। अमराहिव-भुव-वन्धण समत्थु॥
वरिसद्ध सुअइ किह कुम्भयण्णु। महिसाकोडिहि मिण धाइ अण्णु॥
जें परिसेसिउ दइवयणु। पर-णारीहिं समणु।
सो मन्दोवरि जणणि-सम, केइ लेइ विहीसणु॥

—विज्जाहरकांड, संधि ९-१०

वैदिक परम्परा मे बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, तुलसी, रामायण आदि अनेकों रामायण ग्रन्थ लिखे गये हैं। अद्भुत रामायण का कथा-भेद बहुत असाधारण है। सीता की उत्पत्ति के विषय मे उसमे लिखा गया है—गृत्समद नामक एक ऋषि दण्डकारण्य मे रहते थे। उनकी स्त्री चाहती थी कि मेरे गर्भ से साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा कन्या उत्पन्न हो। उसके आग्रह पर ऋषि उसी अनुष्ठान में लगे। वे प्रतिदिन दूध को अभिमन्त्रित कर घडे में डालते थे। एक दिन रावण इसी वन प्रदेश मे आ गया। उसने ऋषि पर विजय प्राप्त करना चाहा; अतः ऋषि के शरीर मे बाण की नोक चुभा-चुभा कर बूंद-बूंद करके रक्त निकाला और उस दूध के घडे को पूरा भर लिया। वह घडा, उसने मन्दोदरी को लाकर दिया और कहा—ध्यान रखना, यह विषकुंभ है। मन्दोदरी उन दिनो रावण से अप्रसन्न थी। उसने सोचा—मेरा पति अन्य स्त्रियों के साथ रमण करता है, ऐसी स्थिति में मुझे मर जाना ही अच्छा है। उसने वह रक्त मिश्रित दूध पी लिया। उससे वह मरी तो नही प्रत्युत गर्भवती हो गई। पति की अनुपस्थिति से सगर्भा हो जाने से, वह उसे प्रकट नही कर पाई। प्रसव-काल मे वह विमान द्वारा कुरुक्षेत्र में चली गई और वहा सीता को जन्म दिया। जन्मते ही उसे उसने जमीन मे गाड़ दिया और पुनः लंका लौट आई। हल जोतने की क्रिया मे सीता जनक के हाथ लगी। उन्होने उसे पुत्री मानकर पाला-पोसा।

बौद्ध रामायण में

बौद्धों के जातक ग्रन्थ भी प्राचीन माने जाते है। उनमे बुद्ध के प्राग् जीवन की कथाए लिखी गई है। दशरथ जातक मे राम-कथा का सविस्तार वर्णन मिलता है। उस जातक कथा के अनुसार भगवान् बुद्ध ही अपने किसी एक जन्म मे राम थे। उनका जीवन-वृत्त वहा निराले प्रकार का ही बताया गया है। दशरथ काशी नगरी के राजा थे। उनके सोलह हजार रानिया थी। मुख्य रानी से राम, लक्ष्मण दो पुत्र और सीता नामक कन्या उत्पन्न हुई। कालान्तर से उस पटरानी की मृत्यु हो गई। अन्य रानी, पटरानी बनी। उससे भरत नामक पुत्र हुआ। वह उसे राज्य दिलाना चाहती थी। राजा ने यह सोच कर कि रानी कही इन तीनो को मरवा न डाले, उन्हे बारह वर्षो के लिये वनवास भेज दिया। दोनो भाई अपनी बहिन सीता को लेकर हिमालय चले गये। वहा एक आश्रम बनाकर रहने लगे। नौ वर्ष बाद राजा दशरथ की मृत्यु हो गई। मन्त्रियो के कहने से भरत राम-लक्ष्मण आदि को लेने के लिये हिमालय पर उनके आश्रम मे आये। उन्हे राजधानी मे चलकर राज्य संभालने के लिए कहा। राम ने कहा—जब तक बारह वर्ष पूरे नही हो लेते, तब तक हम राजधानी मे नही आयेंगे। अन्त मे भरत राम की पादुकाओं को लेकर नगरी मे आये। उन्हें सिंहासन पर स्थापित कर अपना राज-काज चलाने लगे।

बारह वर्ष पूरे होने पर राम राजधानी मे आये। उनका राज्याभिषेक हुआ। अपनी बहिन सीता के साथ उन्होने ब्याह कर लिया। सोलह हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। उस जन्म में स्वय बुद्ध राम थे। बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन दशरथ थे। उनकी माता महामाया राजा दशरथ की प्रथम पटरानी थी। बुद्ध की पत्नी सीता थी। उनके प्रधान शिष्य आनन्द भरत थे और सारिपुत्त लक्ष्मण।

दशरथ जातक की राम-कथा मे सबसे विलक्षण बात राम की अपनी सगी बहिन सीता के साथ विवाह करने की है।

ग्रन्थकार ने इस विवाह सम्बन्ध को हीन भावना से नही लिखा है। इसका कारण यह हो सकता है कि विभिन्न देश कालों मे विवाह सम्बन्ध की विविध प्रणालियां प्रचलित रही हैं। जैन मान्यता के अनुसार यौगलिक जीवन मे सगे भाई बहिन ही विवाह-अवस्था पाकर दाम्पतिक जीवन मे बदल जाते थे। ऐतिहासिक धारणा के अनुसार शाक्य वंशीय राज परिवारों मे राजवश की शुद्धता सुरक्षित रखने के लिये, भाई और बहिन को भी परस्पर ब्याह दिया जाता था। बुद्ध स्वय शाक्य वंशी थे। अतः उनके पूर्व जन्म के वृत्तों में इस प्रकार के उल्लेख का होना नितान्त अस्वाभाविक नही रह जाता।

जैन रामायणों में कथा-भेद

जैन रामायणो मे भी राम-कथा के दो रूप मिलते है, एक विमलसूरि कृत पउमचरिय व रविषेण कृत पद्मचरित्र का और दूसरा गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण का। प्रथम परम्परा जैनो मे आजकल सर्वमान्य और सर्वविदित जैसी है। उत्तर पुराण की राम-कथा अद्भुत रामायण की याद दिला देनेवाली है। उसमे बताया गया है—राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम केकेयी था। भरत और शत्रुघ्न की माता का नामोल्लेख ही नही है। किसी अन्य रानी से उत्पन्न हुए, ऐसा लिखा है। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। नैमित्तिको ने उसके सम्बन्ध मे रावण के सामने भविष्य वाणी की कि आगे चलकर यह कुल-नाशकारिणी होगी। रावण ने अपनी पुत्री सीता को मञ्जूषा मे रखवाकर मिथिला के आस-पास जमीन मे गडवा दिया। सयोगवश हल की नोक मे उलझ जाने मे वह जनक राजा को मिल गई। जनक ने उसे पुत्रीवत् पालापोषा। सीता जब विवाह योग्य हुई तो जनक ने एक यज्ञ किया। राम-लक्ष्मण को वहा आग्रहपूर्वक बुलवाया और राम के साथ सीता का विवाह भी कर दिया। यज्ञ के समय रावण को आमन्त्रण नहीं भेजा गया, इससे वह अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। आगे चलकर नारद के द्वारा उसने सीता के रूप की चर्चा भी सुनी और वह उसे उठा ले गया।

इस रामायण मे राम-वनवास का कोई वर्णन नही है। वाराणसी के निकट

ही चित्रकूट नामक वन से रावण सीता को ले गया था। सीता को पुनः वनवास देने की और अग्नि-परीक्षा की घटना का भी इस रामायण मे कोई उल्लेख नही है। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से पीडित होकर शरीर छोड देते है। राम इस घटना से दुःखित होकर अनेक राजाओ और अपनी सीता आदि रानियो के साथ जैनी दीक्षा ले लेते है।

गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण की यह राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे प्रचलित नही है। दिगम्बर परम्परा मे राम-कथा की एक धारा यह रही है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तरपुराण मे यही राम-कथा लिखी है। कन्नड़ की जैन रामायण चामुड राय-पुराण मे भी राम कथा की इसी परम्परा को अपनाया गया है। दिगम्बर समाज मे भी यह परम्परा विरल रूप से रही है। मुख्य परम्परा तो श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनो समाजो मे पउमचरिय और पद्मचरित्र वाली राम-कथा की ही रही है।

इस प्रकार जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनो ही परम्पराओं के कथा-भेद की बहुत ही सरस और रोचक कहानी है।

काव्य-समीक्षा

अग्नि-परीक्षा का कथा प्रसग मूलतः विमलसूरि कृत पउमचरिउ की रामायण परम्परा से सम्बद्ध है। जैन पाठको के लिये अग्नि-परीक्षा का कथा-प्रसंग चिर परिचित-सा है। इतर पाठको के लिये सीता के सहोदर भामण्डल, अरण्य-वास का संरक्षक बन्धु राजा वज्रजघ आदि कुछ एक पात्र नितान्त नवीन ही होगे। तथापि कथा-वस्तु मे कोई मौलिक भेद नही है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य साकेत अयोध्यागमन के प्रसंग पर पूर्ण होता है और आचार्य श्री तुलसी का यह प्रगीत काव्य अग्नि-परीक्षा इसी प्रसंग से आरम्भ होता है। दोनो ही काव्यो की भाषा सरस और सरल हिन्दी है। दोनों काव्य मिलकर मानो समग्र रामायण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध बन जाते हैं। साकेत के अन्तिम प्रसग व अग्नि-परीक्षा के आदि प्रसंग दोनों काव्यों की रचना शैली को परखने के अनूठे उदाहरण बनते है। साकेत के राम और भरत परस्पर मिलते है—

वर विमान से कूद, गरुड से ज्यो पुरुषोत्तम,
मिले भरत से राम क्षितिज मे सिन्धु-गगन सम!

'उठ, भाई, तुल सका न तुझसे, राम खड़ा है,
तेरा पलडा बड़ा, भूमि पर आज पड़ा है!

गये चतुर्दश वर्ष, थका मे नही भ्रमण में,
विचरा गिरि-वन-सिन्धु-पार लका के रण में।

श्रान्त आज एकान्त-रूप-सा पाकर तुझको,
उठ, भाई, उठ, भेंट, अंक मे भर ले मुझको!
मैं वन मे जाकर हंसा, किन्तु घर आकर रोया,
खोकर रोये सभी, भरत, मैं पाकर रोया!''

अग्नि-परीक्षा के राम और भरत मिलते है—

आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मगा नीचे उतरे,
आ मातृभूमि के अचल मे
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड भरत भाई
गिर गए राम के चरगो मे,
खोए-खोए मे हृदय हुए
पिछले सुमधुर संस्मरगों मे।
अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सींच रहे,
बाहो मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खींच रहे,
सिर पर रक्खा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह मे गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर मे नव आह्लाद जगा।

एक दूसरे के प्रति, दोनो अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलकों से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वागी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनो मे कम बेसी कौन?

साकेत के राम चरगों मे गिरे भरत को उठाकर बाह भरने का अनुरोध करते है तो अग्नि-परीक्षा के राम—"बाहों मे भरकर अवरज को अग्रज ऊपर को खींच रहे" यों अपनी बाहो मे उसे भरने को ही प्रयत्नशील है। दोनों ही काव्यो की भावाभिव्यंजना अपनी-अपनी स्थिति मे अप्रतिम है।

साकेत के राम कहते है कि तेरा पलड़ा भारी है। वह जमीन पर टिका है तो अग्नि-परीक्षा के राम, राज्य-ग्रहगा के प्रसंग पर कहते है—

इस सारी जनता ने तुझको नैसर्गिक शासक माना है।
हमने भी तेरा पूर्गतया अब सही रूप पहिचाना है।

कर प्रजाजनों का संरक्षण तुमने भारी गौरव पाया।
मैं एक सिया को पूर्णतया वन में न सुरक्षित रख पाया।

राम को अपनी लघिमा व्यक्त करने की कैसी अनूठी उक्ति सूझी है।

इस प्रकार 'साकेत' और 'अग्नि-परीक्षा' ये दोनों काव्य रचना शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से एक दूसरे के बहुत कुछ निकट है।

अग्नि-परीक्षा सचमुच ही समालोचना की अग्नि-परीक्षा मे निखर कर ऊपर आने वाली कृति है। हिन्दी साहित्य का यह एक अमर पाथेय है। प्रसंग-प्रसंग पर आचार्य श्री तुलसी ने अछूते भाव इसमे सजोये है।

एक म्यान मे दो तलवारे नही रह पाती, एक गुफा मे दो सिंह नहीं रह पाते, एक राज्य मे दो संचालक नही रह पाते; इन लोक सत्यों को उलटकर राम-लक्ष्मण के राज्य-सचालन के सम्बन्ध से आचार्यवर ने कितना सुन्दर कहा है—

एक गुफा मे दो-दो मृगपति, एक म्यान में दो तलवार,
शासन एक उभय संचालक, देख हो रहा चित्र अपार।
अवरज अग्रज की आज्ञा के बिना न करते कोइ काम,
परामर्श प्रत्येक बात मे लेते लक्ष्मण का श्रीराम।

लोकापवाद के कारण राम सीता के परित्याग की बात कहते है तो लक्ष्मण जनमत को गड्डरी प्रवाह-मात्र ही कह देते है —

अतः नाथ से नम्र निवेदन चिन्तन करे दुबारा,
उलटी सीधी बहती यों ही यह जनमत की धारा।

आचार्य विनोबा भावे का कहना है—गोस्वामी तुलसीदास अपने विशाल ग्रन्थ रामचरित मानस मे राम-सीता के विरह-प्रसगों का चित्रण बहुत ही संक्षेप में कर पाये है। राम और सीता का वियोग उनके लिए सर्वत्र असह्य रहा है। अतः उनकी लेखिनी उन्हे मिलाने मे उतावली होकर चली है।[1] आचार्य श्री तुलसी अपने अग्नि-परीक्षा काव्य मे सर्वथा इसके विपरीत चले है। वियोग और करुणा को सचमुच ही इन्होंने साकार बना दिया है। इस विषय पर उनकी लेखिनी बहुत लम्बी चली है।

गोस्वामी तुलसी अरण्य-मुक्त सीता को दो ही चौपाइयो में बाल्मीकि के आश्रम मे भेज देते है—[2]

जागी सिया सकल दिशि देखा, नहि रथ अश्व नहीं कहि सेखा।
सहि दुख, प्रथम रहे है प्राणा, पुनि सोई चहत न करत पयाना।

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान सन् १९६१ फरवरी ८, वर्ष ८ अंक १५, पृ० ४९ के आधार पर

२. तुलसी रामायण रामाश्वमेध लवकुशाकाण्डम्—५ से ८

करुणा करति विपिन अति भारी, बाल्मीकि आये बनचारी।
पुत्री बाल्मीकि कह ज्ञानी, बन आवन निज चरित बखानी।

आचार्य श्री तुलसी अपने इस काव्य मे वियोग और करुणा को ही मुख्यता देते है। जैन कथा के अनुसार राम का सेनापति कृतान्तमुख अपने स्वामी की आज्ञा से सीता को रथ मे बिठाकर भीषण वन मे ले जाता है; यह कहकर कि राम वन-क्रीडा के लिए गये है, आपको भी वहां चलना है। उस सिहनाद अटवी मे सेनापति और सीता के वार्तालाप से वियोग और करुणा का वर्णन प्रारम्भ होता है। रथ के खडे होते ही चारों ओर देखकर सदिग्धता भरी आवाज मे सीता कहती है—

अरे बोलता क्यों नही, बता किधर है राम,
मुझे कहा लाया यहा, लेकर उनका नाम।

सेनापति अपने भृत्य जीवन को धिक्कारता हुआ कहता है—

मां मुझे कर दो क्षमा, मै पूर्णतः परतन्त्र हू,
समझ लो! बस राम के, द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।
भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु ही संसार मे,
मै नियन्त्रित यथा बन्दी, बन्द कारागार मे।
नही कृत्याकृत्य कुछ भी, सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस, कृत्य उसका नित्य है।
दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का, सबसे बडा अभिशाप है।

असहाय सीता कहती है—

राम-राज्य मे सभी सुखी मै ही दुखियारी,
कौन सुने मै किसे कहू हा! अपनी लाचारी।

वेदना पूरित मानस का कितना सुन्दर चित्रण है—

यो आहे भरती हुई फैक रही निःश्वास,
देख रही धरती कभी और कभी आकाश।
कभी मौन हो सोचती टिका हाथ पर शीश,
कभी चीख में निकलती अन्तर मन की टीस।

सीता की वेदना से सारा अरण्य ही वेदनामय हो जाता है। हिंसक पशु भी क्लेश-कारण न होकर सीता के प्रति सवेदनाशील दिखाई देते है। सचमुच ही कवि

की लेखिनी वेदना-चित्रण के शिखर पर पहुच गई है—

उस देख बिलखते आनन को सारी वनस्थली रोती है,
उन विकल वन्य जीवो के भी मानस मे पीडा होती है।
करते वे मूक सहानुभूति सब घेर सती को लेते है,
कर रहे प्रदर्शित सहज स्नेह सक्लेश न किंचित् देते है।

गोस्वामी तुलसी और आचार्य श्री तुलसी के बीच शताब्दियो की कालावधि है। इस बीच सामाजिक मूल्यों मे नाना उतार-चढाव आ चुके है। रामचरितमानस की सीता आज के पाठक को दीन लगने लगती है। राम द्वारा अपने ऊपर किये गये अक्षम्य व्यवहारों पर भी उसके मुह मे कोई ऐसी बात नही निकलती, जिस से नारीत्व ऊपर उठता हो। रावण-विजय के पश्चात् सीता-राम के सम्मुख लाई जाती है। मिलन की उस मधुर वेला मे भी राम उसके प्रति दुर्वाक्य कहते है। उसके सतीत्व का प्रमाण मागते है—

तेहि कारण करुणायतन कहे कछुक दुर्वाद,
सुनत यातुधानी सकल लागी करन विषाद।

—लकाकाण्ड २७०

गोस्वामी जी, 'प्रभु के वचन शीश धरि सीता' कहकर कथा को आगे बढा देते है, पर विचारी अपमानित सीता को कुछ भी कहने का अवसर नही देते। भयानक विपिन मे निष्कारण ही राम सीता को लाछिना कर छुडा देते है, पर गोस्वामीजी की सीता तो राम के प्रति मूक ही रहती है। लव-कुश और राम-लक्ष्मण के युद्ध के पश्चात् राम की अनुज्ञा समझकर सीता उनसे बिना मिले ही धरती मे समा जाती है। अग्नि-परीक्षा की सीता पत्नी धर्म की मर्यादाओ को अक्षुण्ण रखती हुई पुरुष के कर्तव्यो पर भी निगाह उठा लेती है। लव-कुश-मिलन के पश्चात् जब सुग्रीव राम की ओर से उसे अयोध्या आने को आमन्त्रित करते है, तब पति-भक्ता सीता के हृदय की अनेको तहो के नीचे दबा स्वाभिमान भी उसकी विनोदपूर्ण वाणी के साथ फूट पडता है। वह सुग्रीव को तडाक से कह देती है—

कपिपति मै भूली नही वह भीषण कान्तार,
नही और अब चाहिए स्वामी का सत्कार।
हाथ जोडती दूर से उनको मै महाराज,
क्या करना अब शेष है बुला रहे जो आज।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी द्वारा नारी-जीवन जो अनावश्यक रूप से दब-सा गया है, वह अग्नि-परीक्षा मे आचार्य श्री तुलसी द्वारा पर्याप्त रूप से

ऊपर उठा दिया गया है।

अग्नि-परीक्षा के अवसर पर सीता कहती है—

जीवन की यह स्वर्णिम वेला मेरे अग्नि स्नान की,
बलिदानो से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

अग्नि-परीक्षा मे प्रसग-प्रसग पर कही गई बातें शाश्वत सूक्तिया भी बन गई है। प्रसग विशेष पर कहा गया है —

जो औरो को दु.ख पहुचाते सुख मे न उन्हे बसते देखा,
जो औरों का जी तडफाते उनको न कभी हंसते देखा।

सीता अग्नि-परीक्षा के लिये उद्यत हो चली है। दर्शको के मन मे करुणा का ज्वार उमड पडा है। उनकी अनुभूति को कवि ने कितने सुन्दर शब्दो मे बान्धा है

जब से इस घर मे आई उसने दु.ख ही दुख देखा,
पता नही बेचारी के कैसी कर्मो की रेखा।

कुल मिलाकर अग्नि-परीक्षा साहित्यिकता और धार्मिकता के सगम का एक अनूठा ग्रन्थ है। इस मे श्रद्धाशील लोग राम और सीता के आदर्शो को सहज ही हृदयगम कर सकते है और साहित्यान्वेषी थिरकती साहित्यिकता का पान कर अपने आप को तृप्त कर सकते है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन आचार्यवर ने स० २०१७ के राजनगर चतुर्मास मे किया। कलकत्ता चतुर्मास के पश्चात् अपनी दो सहस्र मील की ऐतिहासिक पदयात्रा पूर्ण कर आचार्य श्री राजनगर (राजस्थान) पहुचे थे। चरणो का विश्राम मस्तिष्क की यात्रा बन गया। तेरापथ द्विशताब्दी समारोह की व्यस्तता मे भी आचार्य श्री ने अग्नि-परीक्षा की रचना के लिए अनोखा समय निकाला। प्रार्थना के पश्चात् आप दश-दश बजे तक रात को सघन वृक्ष की छाया मे बैठकर पद्य-रचना करते। इस प्रकार समय बचा-बचा कर आपने प्रस्तुत रचना सम्पन्न की। अन्धेरी रातो मे भी आपका कार्य अबाध गति से चलता रहा। मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' तथा दिवगत श्री सोहनलाल सेठिया इस नूतन प्रयोग मे अभिन्न सहयोगी रहे। मुनि श्री सागरमलजी की तमो-लेखकता और श्री सोहनलाल सेठिया की स्मरण-प्रखरता इस ग्रन्थ-प्रणयन का इतिहास बन गई। इस ग्रन्थ-प्रणयन मे सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी आचार्यवर के प्रेरणा-स्रोत थे।

मै अपना सौभाग्य समझता हू कि आचार्यवर की कृतियो के साथ मेरा भी सम्बन्ध जुड़ा है। सम्पादन कार्य मे बचपन से ही मेरी रुचि रही है। उसका आरम्भ हस्तलिखित जय ज्योति पत्रिका के सम्पादन से होता है। उसके मासिक सम्पादन के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत के अनेको विशेषाकों का सम्पादन भी मैने किया। उस

समय मेरी अवस्था लगभग १८ वर्ष की थी। इसके बाद मैं अपने दिशा-निर्देशक मुनिश्री नगराजजी के साथ अणुव्रत कार्यक्रम में लगा। वह भी जीवन का एक लम्बा अध्याय बना। इसी बीच मुनिश्री नगराजजी द्वारा लिखित पुस्तकों का सम्पादन कार्य मैंने उठा लिया और मुनिश्री बुद्धमल्लजी द्वारा लिखित साहित्य का समायोजन भी मेरा अपना ही कार्य था। इसी धारा का अपूर्व उन्मेष मैं इसे मानता हूं कि आचार्यवर की रचनाओं के सम्पादन का भी यह योग बना। आचार्यवर के कलकत्ता चतुर्मास (वि० स० २०१६) में इस कार्य को योजनाबद्ध करने के सम्बन्ध से मैंने श्री शुभकरणजी दसाणी से विचार विनिमय किया। वे भी इस कार्य में सहमत और सहयोगी बने। इस सम्बन्ध से लगभग २१ पुस्तकों के सम्पादन व लेखन की परिकल्पना थी। अग्नि-परीक्षा का सम्पादन कर मैं अपनी मंजिल का एक तिहाई तय कर चुका हूं। यथासमय मैं अपनी पूरी मंजिल तय कर लूंगा यह, आशा है। दीक्षा-जीवन से लेकर अब तक सारी प्रवृत्तियों का सम्बन्ध मुनिश्री नगराजजी से तो रहा ही है। मैं अपने दायित्व को उनमें विसर्जित कर सदा निश्चिन्त बना रहता हूं। उनका सतत सान्निध्य ही वर्तमान सफलता की भूमिका है।

मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

वि० स० २०१८ भाद्रव कृष्णा १२
वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन
नया बाजार, दिल्ली

अनुक्रम

१.	शुभागमन	३
२.	षड्यन्त्र	१६
३.	परित्याग	४४
४.	अनुताप	६६
५.	प्रतिशोध	६७
६.	मिलन	१२१
७.	अग्नि-परीक्षा	१५१
८.	प्रशस्ति	१७५

मंगल वचन

जय मंगलमय परम प्रभु,
अर्हन् आत्माराम ।
स्वीकृत हो श्रद्धा-प्रणत,
सविनय कोटि प्रणाम ।

: १ :

शुभागमन

* जय जय रघुपति, जय जय लक्ष्मण
जय जय सीता का शील महा।
यों जनता के जय-घोषों से
भू-मण्डल सारा गूज रहा।
सौधर्म सभा-सी लिए विभा
लंका में जुड़ी विराट सभा।
प्रासाद दिव्य दशकंधर का
दिखलाता अपनी नव्य प्रभा।

सिंहासन पर रघुवर लक्ष्मण
रवि चन्द्र तुल्य थे चमक रहे।
प्रतिपल प्रमोद की धारा में
थे जाते सबके हृदय बहे।
सुग्रीव, बिभीषण, भामण्डल,
नल, नीलाङ्गद, हनुमान सभी।
सुरपति के सम्मुख सामानिक
ज्यों बैठे सह सम्मान सभी।

† विस्मित करते ससद को नभ-पथ से नारद आए,
हो स्वागत की मुद्रा मे उठ सबने शीश झुकाए।

पूछा सविनय रघुवर ने 'भक्तों को कैसे भूले?
क्या पता आप इतने दिन किस दिव्य लोक में भूले?
ऋषिवर! जो घटित हुई है ये बड़ी-बड़ी घटनाएं,
सिय-हरण, मरण रावण का, बोलो क्या-क्या बतलाएं?'

---

* सहनाणी

† लय—तू बता-बता रे कागा

'मेरे से अहो ! छुपा क्या ?' देवर्षि मधुर मुस्काए,
विस्मित करने संसद को नभ-पथ से नारद आए।

'यदि आप उपस्थित होते आनन्द और ही आता,
रण देख आपका मन भी अत्यन्त मुदित हो जाता।'
'बस-बस रहने दो अपनी यह गौरवभरी कहानी,
मेरी भी कुछ तो सुनलो अब सुधा-स्राविनी वाणी।
तुम तो आनन्द मनाते, रोती है वे माताए,'
विस्मित करने ससद को नभ-पथ से नारद आए।

* माता के मन की ममता को मै तुम्हे बताने आया हूं,
माता के मन की क्षमता को मै तुम्हें बताने आया हूं,
माता के मन की समता को मै तुम्हें बताने आया हूं।

वात्सल्य भरा मां के मन मे,
माधुर्य भरा मा के तन में,
उस स्नेह-सुधा की सरिता का रस तुम्हे पिलाने आया हूं।

उदरस्थ पुत्र होता जब से,
मां सरक्षण करती तब से,
उसके कष्टों की मूककथा मै तुम्हें सुनाने आया हूं।

स्नेहाकुल भार उठाती है,
फिर कितनी पीड़ा पाती है,
उस मातृ-हृदय के शुभ दर्शन मै तुम्हे कराने आया हू।

सब सकट स्वयं झेल लेती,
सुत का न आंच आने देती,
उस सफल रक्षिका की सुमधुर स्मृतियां सरसाने आया हूं।

---

* लय—महावीर प्रभु के चरणो मे

सुनती जब सुत का किंचित दुःख,
पीला पड़ जाता उसका मुख,
उसको उद्वेलित आत्मा को मै तुम्हे दिखाने आया हूं।

माता ही भाग्य-विधाता है,
माता ही जीवन-दाता है,
लो ! कान खोल कर सुनो, करुण सन्देशा मां का लाया हूं।

गीतक छन्द

आ रहा हू मै अभी साकेत से सीधा यहा,
बिलखती है, विलपती है उभय वृद्धाए वहां।
राम-लक्ष्मण, राम-लक्ष्मण, एक ही बस ध्यान है,
और सीता के लिए उलझे नसों में प्राण है।

सूख कर कांटा हुआ तन, रह गया कंकाल है,
नींद, भोजन सभी छूटे हुआ हाल-विहाल है।
सतत सेवारत भरत, फिर भी न उनको चैन है,
सिक्त होकर आसुओं से हुए निष्प्रभ नैन है।

वह त्रियामा राम ! उनको लक्ष-यामा हो रही,
विरह-व्याकुल बनी कौशल्या-सुमित्रा रो रही।
दुःख-सागर में निमज्जित वे कही ढह जाएंगी,
तो सभी उनके हृदय की, हृदय में रह जाएंगी।

अधिक दिन की वे नही, विश्वास क्या इस श्वास का,
कहो झंझा में पता क्या ? क्षीण दीप-प्रकाश का।
अतः मिलना हो तुम्हे तो शीघ्र ही जाओ वहां,
मिटा आर्त्तध्यान उनको शान्ति पहुंचाओ वहां।

* कहते आगम पुत्रों पर है अकथ, अतुल मां का उपकार,
पुत्र करे कितनी परिचर्या नही उतरता फिर भी भार।

* रामयण

अवसर है यह अब यत्किंचित् उऋणता को पाने का ,
कहते वेद—'मातृ-देवो भव', उसको सफल बनाने का ।

देकर उन्हें समाधि मानसिक अब शुभयोग बढ़ाना है ,
सफल साधना में सहयोगी पूर्णतया बन जाना है ।
कहने के अधिकारी हम, फिर उचित जचे सो करना काम ,
नहीं प्रयोजन है दुनिया मे भाई ! हम तो रमते राम ।

दोहा

बोले कौशल्या-तनय, धन्य हुए हम आज ,
दे दर्शन, नव-चेतना जागृत की महाराज ।

† नही कभी भी हम भूलेंगे माता के उपकार को ,
जागृत किया जिन्होंने सात्विक, नैसर्गिक संस्कार को ।

जीवन के कण-कण में जिनका रमा हुआ आभार है ,
प्रतिपल स्मृति पटलों पर अंकित रहता प्यार-दुलार है ,
बढ़े, बढ रहे और बढेंगे, ले उनके आधार को ।

इधर उलझनों में उलझे हम, रहे कार्य में व्यस्त से ,
भगवन् ! कही-कहीं त्रुटियां भी हो जाती छद्मस्थ से ,
करना पड़ा व्यवस्थित इस लका के शासन-भार को ।

अवसर पर दी हमें प्रेरणा, मा से मिलना चाहिए ,
आते है हम शीघ्र, आप जा उनको धैर्य बधाइए ,
सुस्थिर रखना निर्यामक बन आशा की पतवार को ।

गीतक छन्द

आ गए नारद अयोध्या उछलते आनन्द में ,
मातृ-मन के मोद को बान्धा न जाता छन्द में ।

† लय—मानव बोलो मानवता के

राम का शीघ्रागमन सुन सभी हर्ष विभोर हैं,
भरत-मन प्रमुदित अमित उल्लास चारों ओर है।
सुखद स्वागत की नगर में हो रही तैयारियां,
पुरुष कार्य-व्यस्त सारे, थीं न पीछे नारियां।
स्वच्छ वातावरण पुर का, मधुर सौरभ से सना,
सभी द्वारो पर सुवर्णाक्षरांकित शुभ भावना।
स्वागत स्थल में हुआ साकेत आ समवेत है,
लोक-मानस हो रहा अद्वैत भक्ति उपेत है।
भरत भ्राता शत्रुघ्न सह आ गया उद्यान में,
थी सभी की दृष्टि केन्द्रित एक पुष्पक यान में।

* उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
अब उतर रहा है यान नील अम्बर से,
जय-घोष तुमुल सब करते एक स्वर से।
पुष्पक विमान की प्रभा सूर्य मण्डल-सी,
लहराती ऊर्ध्व पताकाएं चचल-सी।
आलोक विलोक दूर से जन हर्षाए,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
नभ से देखा है राघव ने जनता को,
आंकी उनके अन्त.स्थल की ममता को।
साकार हुई वर्षों की स्मृतियां सारी,
जागी भावुकता सहज हृदय मे भारी।
हर्षाश्रु-बिन्दु लोचन युग में लहराए,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।
† आया अवनी पर अभ्र-यान
राघव-लक्ष्मण नीचे उतरे,

---

* लावणी
† सहनाणी

आ मातृभूमि के अंचल में
चेहरे निखरे उल्लास भरे,
बालकवत् दौड़ भरत भाई
गिर गए राम के चरणों में,
खोए-खोए से हृदय हुए
पिछले सुमधुर संस्मरणों में।

अविराम राम पादाम्बुज को
नयनाम्बुज से वे सींच रहे,
बाहों मे भरकर अवरज को
अग्रज ऊपर को खींच रहे,
शर पर रखा है वरद हस्त
अत्यन्त स्नेह से गले लगा,
भरतेश विरह सब भूल गए
अन्तर में नव आह्लाद जगा।

* एक दूसरे के प्रति, दोनों अनिमिष दृष्टि निहार रहे,
बहा-बहा पानी पलकों से मन का भार उतार रहे।
मुखरित मोद, भावना मुखरित, किन्तु हो रही वाणी मौन,
आनन्दाब्धि निमज्जित मानस, दोनों में कम बेसी कौन?

दोहा

आ कर के शत्रुघ्न ने, सविनय किया प्रणाम,
वत्सलता से दे रहे, शुभाशीष श्रीराम।

* गंगा-यमुना की धारा ज्यों मिले भरत लक्ष्मण के साथ,
कुशल प्रश्न अब भूप भरत से पूछ रहे प्रमुदित रघुनाथ।
क्यों भाई! तुम सकुशल तो हो? दीख रहे हो क्यों कृशकाय,
प्रमुदित मन माताएं होंगी? सकुशल होगा जन-समुदाय।

* रामायण

गीतक छन्द

प्रश्न सुनते ही भरत का गला सहसा भर गया,
हो गई पलकें छलाछल ज्वार-सा आया नया।
धैर्य कर एकत्र सविनय ज्येष्ठ से कहने लगे,
भाव मन के स्रोत बन वदनाद्रि से बहने लगे।

* मझदार नाव को छोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आज कुशल?
बच्चों से नाता तोड़ चले,
क्या पूछ रहे हैं आज कुशल?

नन्हे-नन्हे इन कन्धो पर,
साम्राज्य-भार इतना रख कर,
मेरे से मुखडा मोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आप कुशल?

लो पूज्य पिताजी ने दीक्षा,
पूरी न पा सका मै शिक्षा,
(मुझे)इस भवर जाल से जोड़ चले,
क्या पूछ रहे है आप कुशल?

मै रोया कितना बिलख-बिलख,
कितना था मेरे मन में दुःख,
कर उसे उपेक्षित दौड़ चले,
क्या पूछ रहे हैं आप कुशल?

† हरण हुआ भाभी का फिर भी मुझे स्मरण तक नही किया,
और कुशल सन्देश हमें लक्ष्मणजी का भी नही दिया।

---

* लय—एक दिल के टुकडे
† रामायण

रण में सबको बुला लिया, पर मेरी याद नहीं आई,
उसी पिता का पुत्र कहो, क्या था न आपका ही भाई ?

कभी किसी के साथ न करना, जैसी की है मेरे साथ,
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा, किसे उलाहना दूं मैं नाथ।
की न कल्पना जैसी, वैसा मेरे साथ हुआ व्यवहार,
तब न सुनी अब तो सुन लेना, पीड़ित मन की करुण पुकार।

दोहा

मैंने इतने दिन किया आर्य ! आपका काम,
अब सम्भालो आप ही, तब बोले श्रीराम।

* क्यों तू करता है भ्रात भरत
ऐसी बच्चों की सी बातें,
कैसे मिलती यह विभुता जो
हम नहीं अयोध्या से जाते,
इस सारी जनता ने तुझको
नैसर्गिक शासक माना है,
हमने भी तेरा पूर्णतया
अब सही रूप पहिचाना है।

कर प्रजाजनों का संरक्षण
तू ने भारी गौरव पाया,
मैं एक सिया को पूर्णतया
वन में न सुरक्षित रख पाया,
मां कैकेयी की सूझबूझ का
ही यह तो सुन्दर फल है,

---

* सहनाणी

श्री भरतराज के रक्षण में
साम्राज्य अवध का अविचल है।

यदि तुझे बुला लेते तो कह
सम्भाल कौन पीछे करता ?
बूढ़ी माताओं की सेवा कर
ताप कौन उनका हरता ?
तेरे रहते हम पूर्णतया
निश्चिन्त वहां पर थे भाई !
क्या होगा अहो ! अयोध्या में ?
यह मन में कभी नही आई।

उलझे थे इतने उलझन मे
हम अरे ! तुझे क्या बतलाए ?
जिसके कारण ही हम कोई
सन्देशा भेज नही पाए,
लका की करके विजय विकट
कितने धागे सुलझाए है,
अब करने को विश्राम यहां
हम भरत-राज्य में आए है।

* उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

यों मधुर-मधुर सवाद पन्थ मे चलता,
सब भूल रहे हैं आज विरह-व्याकुलता।
जनता की भारी भीड़ उमड़ती जाती,
मानो नगरी में भी वह नही समाती।
जन पक्तिबद्ध है पथ में दाए बाए,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

---

* लावणी

छज्जों, छत्तों से सुमन वृष्टियां होतीं,
न्योछावर भर-भर थाल हो रहे मोती।
वनिता की वनिताएं मन-मोद मनाती,
देती आशीषें सुमधुर मंगल गातीं।
आनन्द विभोर सभी बालक-बालाएं,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

नभ गूंज रहा वाद्यों की धुंकारों से,
भू बधिर हो रही जय-जय के नारों से।
देते दशरथ-सुत दान मुक्त हाथों से,
करते सबका सम्मान मधुर बातों से।
आते विलोक, मन-मुदित हुई माताएं,
उत्सव का दिन है आज राम घर आए।

गीतक छन्द

राजमहल सजे हुए थे नव कलात्मक ढंग से,
कर रही सेनाभिवादन अमित हर्ष उमंग से।
उमड़ते जन आ रहे है उधर सिन्धु-तरंग से,
रक्त थे सबके हृदय श्रीराम ही के रंग से।

* माताओं को देख दूर से उतर गए हाथी से राम,
सत्वर गति से किया मातृ-चरणों में सविनय सविधि प्रणाम।
हृदय भरा हर्षातिरेक से वचन सुधा मुख से झरती,
माता के मन की ममता को माता ही जाना करती।

पैरों में गिरती सीता को बोली अपराजिता सगर्व,
बेटी! सदा सुखी रह, तेरी सफल कामनाएं हों सर्व।
राम और लक्ष्मण से विजयी पुत्र-रत्न करना उत्पन्न,
भारत के गौरव की रक्षा में हो पूर्णतया सम्पन्न।

* रामायण

लक्ष्मण ने ज्योंही कौशल्या के चरणों में रखा शीश,
पकड़ बांह गोदी में बिठला, देती है मंगल आशीष।
सर पर धर कर हाथ पूछती बेटा! कहां हुआ था घाव?
लालन क्या बतलाऊं कैसा उभरा था तब ममता-भाव।

बार-बार तन को सहलाती, कोमल हाथों से संस्पर्श,
अस्फुट शब्दों में आता बाहर रह-रह अन्तर का हर्ष।
कभी देखती है चेहरे को, कभी वक्ष की ओर सगोर,
जहां हुआ था महाशक्ति का प्रलयंकार प्रहार कठोर।

दोहा

बेटा! वन में तो बहुत, झेले होंगे कष्ट,
नहीं, नहीं मातेश्वरी! बोले लक्ष्मण स्पष्ट।

अनुभव बतलाता हूं, संस्मरण सुनाता हूं,
अनुभव बतलाता हूं, अपने वनवासी जीवन के
माताजी हो जाएंगी आनन्दित उनको सुनके।
अनुभव बतलाता हूं, संस्मरण सुनाता हूं।

पूज्य पिताजी तुल्य प्रेम पाया था भाईजी का।
मिला आपसे भी बढ़कर वात्सल्य मुझे भाभी का।

वे वन के प्राकृतिक दृश्य लगते थे कितने प्यारे।
बन स्वतन्त्र आगे से आगे बढ़ते चरण हमारे।

इच्छा होती जहां, वहीं हम वर्षावास बिताते।
ले आते फल-फूल, पका देती भाभी, हम खाते।

स्थान-स्थान पर लोक हजारों ग्रामों के आ जाते।
घण्टों उनसे होती रहती, मीठी-मीठी बातें।

* लय—म्हांने चाकर राखोजी

कहीं किसी का दुःख सुन लेते, (तो) राम वहीं पर जाते ।
कर समुचित प्रतिकार, शान्त मन वन ही में आ जाते ।

जो अड़ जाता तो मैं उसको पूरा स्वाद चखाता ।
वह रघुवर की चरण-शरण में ही छुटकारा पाता ।

झांय-झांय करती झंगी में सुखपूर्वक सो जाते ।
प्रातः उठते बसा हुआ हम नगर मनोहर पाते ।

राम जहां है वहीं अयोध्या, यह प्रत्यक्ष निहारा ।
जंगल का भी मंगलमय हो जाता कण-कण सारा ।

माताजी ! हमने कितने ही उजड़े देश बसाये ।
विलख-विलख करके मरते कितनों के प्राण बचाये ।

आर्यों पर से म्लेच्छों का सारा आतक हटाया ।
पापों का बदला पापी को हाथो हाथ चुकाया ।

किया धार्मिकों का संरक्षण देकर सहज सहारा ।
पराधीनता से कितनों को दिलवाया छुटकारा ।

सब कुछ ठीक हुआ पर मेरी एक भूल से सारी ।
सुखमय स्थितिया बदली, पाये भाईजी दुःख भारी ।

हरण हुआ भाभी का, आखिर करनी पड़ी लड़ाई ।
छेद कंधरा दशकधर की विजय समर में पाई ।

हम डंके की चोट सती सीता को लौटा लाए ।
आज आपकी दयामया से खुशी-खुशी घर आए ।

* सुन मधुर सस्मरण ये सारे
माता आनन्द विभोर हुई,
नगरी की आभा खिली नई
हर्ष-ध्वनि चारो ओर हुई,

* सहनाणी

स्वागत के मंगल गीतों से
मुखरित पुर की गलियां-गलियां,
घर-घर में दिव्यालोक लिए
जगमगा रही दीपावलियां।

सब तरह प्रजा को देख सुखी-
सन्तुष्ट ; राम सन्तुष्ट हुए,
सन्देश देश के नाम दिया
जन-हृदय भक्ति से पुष्ट हुए,
अब भरी सभा में भरत भूप
रघुवर आज्ञा ले हुए खड़े;
'सम्भालो अपना राज्य देव !'
ये शब्द सहज ही निकल पड़े।

दोहा

तेरा ही यह राज्य है, तू ही कर सम्भाल।
क्यों तू मेरे डालता, व्यर्थ गले मे जाल।

* राज्य छोड़ना भरत चाहते, राम न लेने को तैयार,
आज राज्य लेने देने की आपस में होती मनुहार।
कहता भरत 'न मुझे चाहिए, जाने आप आपका काम',
राम—मैने तो कह दिया यहां, हम आए हैं करने विश्राम'।

† 'यह राज्य भरत है तेरा, तू ही निभा इसे।'
भरत—'मै नही चाहता करना, सौपे मन हो जिसे।'

उस समय आपकी मीठी बातों में आ गया।
मीठों के साथ नही अब घुन जाएगे पीसे।

---

* रामायण
† लय—प्रभु पार्श्वदेव चरणो मे

राम—सौंपा जब पितृप्रवर ने तेरे को भार है।
बतला भाई ! अब तू ही, सौंपूगा मैं किसे ?

भरत—भाईजी ! तीखे ताने, मार्मिक क्यों कसते हैं ?
क्या छुपा आपसे बोलो, सब अब तक आदि से।

राम—सुन भाई ! छोड़ तुझे हम, वनवास न जाएगे।
अब यही रहेंगे, कर तू साम्राज्य समाधि से।

कहना न राम के रहते, मैं राज्य नहीं लूगा।
रहना चाहते हम तेरे शासन में शान्ति से।

भरत—यह राज्य आपका ही है सम्भालें आप ही।
अवकाश चाहता हू मै इस आधि-व्याधि से।

सिंहासन पर तो होंगे शोभित श्रीराम ही।
मैं जीवन-मुक्त बनूगा संयम-तप आदि से।

इस शासन-संचालन का मेरे को त्याग है।
भूषित होंगे अब राम, राज-राजेश उपाधि से।

दोहा

सुन भाई की बात यह सारे रहे अवाक।
ऐसे कैसे राज्य को देते अहो तलाक।

एक इंच भू के लिए लड़-लड़ मरते भ्रात।
राज्य सौंपना हाथ से यह विस्मय की बात।

भरत त्वरित मुनि बन चले, कर जागृत सुविवेक।
वासदेव-बलदेव का हुआ राज्य अभिषेक।

: २ :

षड्यन्त्र

* राज्यारोहण की मंगल वेला में प्रमुदित है साकेत,
उत्सव को उत्साहित करने भूप सहस्रों हैं समवेत।
स्वर्ग सभा-सी सभा प्रभा खिल रही दिव्य सिहासन की,
हुई व्यवस्थित नई घोषणा वासुदेव-अनुशासन की।

गीतक छन्द

धरा-धन देकर सभी का मान राम बढ़ा रहे,
दान ले अवधेश का उत्फुल्ल सारे जा रहे।
राम-लक्ष्मण का समूचे देश में साम्राज्य है,
राम-राज्य अखण्ड छाया सरस-रस सुख प्राज्य है।

दोहा

राम और सौमित्री का जैसा अन्तर-स्नेह।
सूक्त सार्थ वह हो रहा, एक जीव दो देह।

* एक गुफा में दो-दो मृगपति, एक म्यान में दो तलवार,
शासन एक उभय संचालक, देख हो रहा चित्र अपार।
अवरज अग्रज की आज्ञा के बिना न करते कोई काम,
परामर्श प्रत्येक बात में लेते लक्ष्मण का श्रीराम।

† जय राम राज्य, जय राम राज्य धुकार समूचे भारत में।
अविकल प्रभुत्व सीतापति का अधिकार समूचे भारत में।

---

* रामायण

† लय--घनश्याम तुम्हारे द्वारे पर

अविरल आनन्द स्रोत बहता,
था कही किसी को क्लेश नही,
सुख, शान्ति, समृद्धि, सिद्धि, सम्पत
साकार समूचे भारत में।

जलधर मन इच्छित देते जल,
जहां खड़ी फसल लहराती थी,
सन्तोष-स्नेह - सच्चाई के
संस्कार समूचे भारत मे।

जन हित के साधन सभी सुलभ.
था राज्य-प्रजा में एकोपन,
प्रामाणिकता से वृद्धिगत
व्यापार समूचे भारत में।

सात्विकता, श्रद्धा, सज्जनता,
सारल्य, विनय, वात्सल्य भरा,
ऊंचा आचार, विचार विमल
व्यवहार समूचे भारत में।

सब न्यायोचित शासन-प्रबन्ध,
सम्बन्ध परस्पर थे सुन्दर,
जनता पर हल्के से हल्का
कर-भार समूचे भारत में।

गीतक छन्द

नहीं करते कभी छोटे, बड़ों की अवहेलना,
मानते कर्तव्य हैं, आदेश उनका झेलना।
बड़े छोटों की उपेक्षा, नहीं करते थे कभी,
कार्य होता वही जिसमें पूर्ण सहमत हों सभी।

त्याग की पावन प्रतिष्ठा, सत्य-निष्ठा थी महा,
त्यागियो के चरण में नत-शीश जन-मानस रहा।
विनय और विवेक बढता, उच्च शिक्षा साथ में,
उलझते थे वे न कोई व्यर्थ मिथ्या बात में।

नारियों का स्थान पुरुषों से न किंचित् हीन था,
आत्म-निर्णय में रहा, चिन्तन सदा स्वाधीन था।
पूर्ण था अधिकार, केवल भोग सामग्री नही,
किन्तु होने दिया उसका दुरुपयोग नही कही।

भिक्षुओं के सिवा भिक्षा मांगना तो पाप था,
पराश्रित जीवन बिताना घोरतम अभिशाप था।
दान लेना और देना, रूप था सहयोग का,
स्पष्ट था प्रतिकार पुण्य-प्रलोभनो के रोग का।

दोहा

राम-राज्य में हो रहे सब आनन्द विभोर।
अब थोड़ा-सा झांक लें, अन्तःपुर की ओर।

रमणियां राम की सब मिल सोच रही है,
सीता रहते किंचित सुख हमें नहीं है।
उससे ही रंजित नाथ! रात-दिन रहते
हमसे हंसकर दो बात कभी ना कहते।

जलता रहता मन भीतर ही भीतर में,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।
आलोक जहां से फैला भारत भर में,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

* लावणी

है गर्भाधान किया सीता ने जबसे,
प्रभु और विरक्त हो गए हैं हम सबसे।
रह जाती हम तो बदन ताकती सारी,
उनको तो एक वही प्राणों से प्यारी।
लगती है मन को ठेस, द्वेष अन्तर में,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

क्या पता कौनसे भव का लेती बदला,
उज्ज्वल भविष्य कर दिया हमारा धुंधला।
स्वामी को वश कर स्वयं बनी पटरानी,
फिर गया हमारी आशाओं पर पानी।
संक्लेश भर दिया सारे अन्तःपुर में,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

अब ऐसा एक उपाय अचूक निकालें,
हम ज्यों-त्यों इसे बहिष्कृत करवा डालें।
यदि एक बार भी विमुख राम हो जाएं,
चुपचाप हमारा सभी काम हो जाए।
फिर देखो कैसे फूल खिले अम्बर में,
यह कैसा घोर अन्धेर राम के घर में।

दोहा

सबने सीता से अलग करके सभा स्वतन्त्र।
रचा बात ही बात में एक नया षड्यन्त्र।

कपट पिटारी नारियां, उक्ति हो रही सार्थ।
पर सुख में हो दुर्बला, खोती हैं परमार्थ।

रहती नारी हृदय में सदा सोत से दाह।
ज्यों-त्यों उसके नाश की वह निकालती राह।

शूली से भी कष्टदा, होती स्त्री को सौत।
'सौत न देना सांवरा, दे दे चाहे मौत'।

बहु-पत्नी की वस्तुतः प्रथा कलह का हेतु।
कितने इससे टूटते स्नेह-सिन्धु के सेतु।

ज्यों ज्यों बढ़ा राम के आगे वैदेही का अति सम्मान,
त्यों भड़की विद्रोह-भावना, चला एक अभिनव अभियान।
हुई संगठित सभी रानियां रचित योजना के अनुसार,
कार्य-सिद्ध करने अपना अब होकर पूर्णतया तैयार।

सीधी सीता के महलों में
आई सब मिलकर एक साथ,
उत्फुल्ल हो गई जनकसुता
अपने घर सबको देख साथ,
स-स्वागत उन्हें बिठाती है
देकर सबको समुचित आसन,
अब कुशल प्रश्न के साथ-साथ
प्रारम्भ हो रहा सभाषण।

क्या कहना बाई! सीता का यह हम सबमें भाग्यवती,
पति-सेवा-रत रही निरन्तर दुर्लभ ऐसी महासती।
घोर वनों में गई, सही विपदाएं धृति के साथ सदा,
होता है रोमाञ्च, श्रवण जब कर पातीं हम यदा-कदा।

बोली वैदेही बहिनों! क्यों करती हो थोथी स्तवना?
परम हर्षिता हूं मैं तो, यह प्रेम देख करके अपना।
समय-समय पर आ-आकर तुम करती हो मेरी सम्भाल,
तत्क्षण बोल उठी वह मुखिया जो उन सबमें थी वाचाल।

---

* रामायण
† सहनागणी

* आई हम कुछ आज आपसे पाने के लिए।
जटिल उलझनें जीवन की सुलझाने के लिए।

चाहती है हम समय-समय पर सब मिलकर एकत्र हों,
नारी जागृति की चर्चाएं, यत्र तत्र सर्वत्र हों,
मार्ग-दर्शिका बनो, मार्ग दिखलाने के लिए।
जटिल उलझनें जीवन की सुलझाने के लिए।

रहीं अकेली मासो तक उस राक्षस रावण के यहां,
विविध यातनाएं सहकर भी अविचल आप रही वहाँ,
कष्ट करें, वे अनुभव हमें सुनाने के लिए।
जटिल उलझनें जीवन की सुलझाने के लिए

† इसी बीच मे कहा एक ने सबकी चिर-अभिलाषा है,
बाई! दशकधर कैसा था ? यह अन्तर-जिज्ञासा है।
सुनने में आता है, उसका सुन्दर, अभिनव रूप-विचित्र,
सहज समझ में आ जाएगा, अगर बनादो रेखा चित्र।

* आंका न कभी मैंने उसको, अंकित कर कैसे दिखलाऊं ?
झांका न कभी मैंने उसको, छवि कैसे चित्रित कर पाऊं ?

मै नयन झुकाये रहती थी,
मन मार सभी कुछ सहती थी,
अपने भावों में बहती थी,
वे क्या-क्या अनुभव बतलाऊं ?
झांका न कभी मैंने उसको,
छवि कैसे चित्रित कर पाऊं ?

---

* लय—अणुव्रत है सोया संसार जगाने
† रामायण
* लय—नर देही व्यर्थ गमाई नां

क्या संकट का भी पार रहा,
इस मन पर दुस्सह भार रहा,
हा ! जीना ही दुश्वार रहा,
स्मृति में आते ही घबराऊ।

दोहा

जिसने आ आकर किये नित्य नये उत्पात।
उसे कभी देखा नही, कम जचती यह बात।

* कहती हूं बहिनों सही-सही,
सवत्सरार्ध मैं वहां रही,
पर देखा उसको कभी नहीं,
वह कैसा था, क्या समझाऊ ?

दोहा

नही देखा हो पूर्णत: चित्र न खींचो खर।
पर आते-जाते हुए देखे होंगे पैर।

चतुष्पदी

समझ न पाई जनक-दुलारी,
उनकी कपट-क्रियाएं सारी।
आगे-पीछे कुछ न विचारा,
है भावी की निश्चित धारा।

* लय—नर देही व्यर्थ गमाई नां

हां, हां, बहिनों ! आते-जाते ,
चरण दृष्टि में तो पड़ जाते ।
किन्तु न उन्हें गौर से देखा ,
कैसे खींचू उनकी रेखा ।

जो देखा है, वही दिखाओ ,
हार्दिक इच्छा सफल बनाओ ।
तुम सब मत तानो, जाने दो ,
कभी प्रसग और आने दो ।

हम सबकी उत्कट है आशा ,
जीजी ! कर दो पूर्ण पिपासा ।
अति आग्रह को टाल न पाई ,
पत्र-तूलिका तुरत मगाई ।

दोहा

चरण-चिन्ह चित्रित किये रावण के साकार ।
अवलोकन का स्वाग रच पत्र कर दिया पार ।

* बस तत्क्षण बातों-बातों में
सानन्द सभा सम्पन्न हुई ,
सीता कुछ भेद न जान सकी
वे मन में परम प्रसन्न हुई ,
अस्फुट रेखांकित चरण-चिन्ह
का तैल चित्र तैयार हुआ ,
फिर आगे के विस्तृत कार्यक्रम
पर भी पूर्ण विचार हुआ ।

---

* सहनाणी

रक्खा वह चित्र पीठिका पर
पूजा सामग्री साथ-साथ,
ससद से आते रघुवर का
हो गया सहज ही दृष्टिपात,
रावरण के से ये पैर यहां
विस्मित हो, बैठे पूछ आर्य!
'हम क्या जाने' यह तो प्रभु की
प्रिय पटरानी का नित्य कार्य।

दोहा

क्यों करती हो तुम सभी व्यर्थ, अनर्गल बात।
सहज उपेक्षा कर चले त्वरित अयोध्यानाथ।

चल न सका इस बार यह राघवेन्द्र पर वार।
अपमानित होना पड़ा, किन्तु न मानी हार।

गीतक छन्द

सभी अपनी दासियों को सौंपती यह कार्य है,
पूजती रावरण-चरण, सीता सदा अनिवार्य है।
दे प्रलोभन भेज घर-घर में बढ़ाई बात को,
कर दिया है रवि-उदय साक्षात आधी रात को।

* कैसा क्रूर कर्म है, यों मढ़ देना औरों पर अभियोग।
औरों पर अभियोग, है यह भीषरणतम क्षय-रोग।

देख नहीं पाते जो औरों के शुभ का संयोग।
मत्सरता में मरते, करते वे ऐसे उद्योग।

* लय—म्हांरा सतगुरु करत विहार

जैसे को तैसे का ही, फिर मिल जाता सहयोग।
तब तो क्या कहना डायन को, मिला जरख का योग।

छलनामय कलना का पूरा होता है उपयोग।
किन्तु अन्त में क्या होगा यह नही जानते लोग।

* इस अभ्याख्यान महापातक
का कोई भी प्रतिकार नही,
इस महारोग का मरने के
अतिरिक्त और उपचार नहीं,
मद्यप, लंपट, लूटाक, हिंस्र
अपने पापों को धो सकते,
व्रत-भ्रष्ट सविधि प्रायश्चित्त कर,
तप-जप से पावन हो सकते।

पर अभ्याख्यानी की कोई
निष्कृति का और उपाय नही,
वापिस अभियोग बिना भुगते
बुझ सकती अन्तर-लाय नही,
कर मुनि को लांछित सोता यह
उसका यों प्रतिफल पाती है,
(पर) इनका क्या होगा, जो इतना
भारी षड्यन्त्र चलाती हैं।

दोहा

यों फूलों की चाह में, बोती हाय ! बबूल।
किन्तु मिलेगे अन्त में, तीक्ष्ण नुकीले शूल।

---

* सहनाणी

गति विधि करने ज्ञात प्रजा की थे नियुक्त कुछ चर विश्वस्त,
समय-समय देते रहते, जो रघुपति को संवाद समस्त।
किया रानियों ने प्रोत्साहित उनको बिछा प्रलोभन पाश,
देख राम को एकाकी, सब आए उनके पास उदास।

चतुष्पदी

चेहरे पर चिन्ता की छाया,
शोकाकुल मुखड़ा मुरझाया।
थर-थर कांप रहा तन सारा,
बरस रहे लोचन जल-धारा।

घबराए-घबराए आए,
राघव ने आसन्न बुलाए।
आश्वासित कर पास बिठाया,
मधुर स्वर से धैर्य बधाया।

अरे! आज यों क्यों करते हो,
बोलो आहें क्यों भरते हो?
है तुम सबकी यह स्थिति कैसी?
क्या दारुण घटना है ऐसी?

रुद्ध कंठ क्यों बोल न पाते?
क्यों नयनों से नीर बहाते?
धैर्य धरो, क्या हुआ बताओ?
मत सकुचाओ, मत भय खाओ?

गीतक छन्द

क्या कहें हम आर्य! कुछ भो नहीं जाता है कहा,
वेदना से व्यथित हो शतखण्ड मानस हो रहा।

---

* रामायण

बाध्य हो कर्तव्य से आना पड़ा प्रभुवर यहां,
आपके अतिरिक्त स्वामिन् ! त्राण हमको है कहां ?

चतुष्पदी

और नहीं आगे कह पाए,
रसना रुकी हृदय भर आए।
पुनरपि श्रीरघुवर समझाते,
अन्तर का उद्वेग मिटाते।

तुम सब ही मेरे विश्वासी,
स्वामिभक्त! आज्ञा अधिवासी।
भाई! बिना कहे क्या जानूं ?
सत्य स्थिति कैसे पहचानूं ?

उचित ध्यान मै उस पर दूगा,
यथाशीघ्र प्रतिकार करूंगा।
जो हो सही-सही बतलाओ,
मेरे से कुछ भी न छुपाओ।

देव ! नगर में जो चर्चाएं,
फैली हैं क्या-क्या बतलाएं।
कहना चाहते, कह ना पाते,
हम सबके अन्तर अकुलाते।

* क्या कहें, सुनें, कर्मो की अलख कहानी।
चलती कभी न इसके आगे मनमानी।

जिसके लिए देव ने इतने भीषण कष्ट उठाए।
सतत परिश्रम कर संगर के साधन सभी जुटाए।

* लय—पला छोड़ दे मेरा

सेतु बांध कर महासिन्धु पर प्रखर शौर्य दिखलाया।
कितने धीर-वीर सुभटों का रण में रक्त बहाया।

महाशक्ति आघात भयंकर लक्ष्मणजी ने झेला।
प्राण हथेली में रख जूझा प्रण पर वीर अकेला।

और अन्त में दशकंधर को यम का ग्रास बनाया।
सीता को लौटाकर मन में भारी हर्ष मनाया।

सर्वाधिक सम्मान बढ़ाया अपने अन्तःपुर में।
तथाकथित उस महासती का अपयश है घर-घर में।

दोहा

लंका में एकाकिनी रही सतत छः मास।
उसके अडिग सतीत्व पर कैसे हो विश्वास।

आकर्षित दशमुख हृदय रहा सदा उस ओर।
बना वासना-पूर्ति को, कोमल और कठोर।

बिठा अकेली पुष्पक में रावण ले जाया करता था,
निर्जन उपवन में प्रमोद से जी बहलाया करता था।
विद्या, यन्त्र, मन्त्र से जिसने लिए देव-देवी भी कील,
क्या सम्भव है उसके आगे ? रहा अखण्डित उसका शील।

† ये ऐसी तर्कें हैं जिनका
सवितर्क न उत्तर दे पाते,
आत्मीय आपके जो ठहरे,
दिल को कचोटती ये बातें,

---

* रामायण
† सहनाणी

बौद्धिक, सामाजिक, राजनयिक
सब क्षेत्रों में हैं चर्चाएं,
गलियों-गलियों में, घर-घर में,
स्वामिन्! किस-किस को समझाएं।

दोहा

और रमणियां है बहुत, सुन्दर रम्याकार।
क्यों न छोड़ देते उसे रखने लोकाचार!

* प्रत्यक्ष बड़ों के सम्मुख आ
कोई भी नही कहा करता.
डर के मारे छुप-छुप कर हो
विप्लव का स्रोत बहा करता,
'म्याऊ' के मंह पर कौन चढे,
यह सबसे बड़ी पहेली है,
आगे स्तवना, पीछे निन्दा
साधारण जन की शैली है।

क्या किसे कहें? क्या उत्तर दें?
सुन-सुन कर ही रह जाते हैं,
जनमत के आगे जोर नहीं
जल-भुन कर ही रह जाते हैं,
बस सुनें जहां अपवाद यही
विक्षोभित वातावरण हुआ,
जिसका अपयश करती जनता
उसका जीते भी मरण हुआ।

---

* सहनाणी

यह नीति वाक्य सुन राघवेन्द्र
जनता की भ्रान्ति मिटाएगे,
आगे-पीछे चिन्तन पूर्वक
अत्युत्तम कदम उठाएंगे,
उत्तेजित, उद्वेलित अन्तर
क्षण भर में चेहरा बदल गया,
चर खिसक गए है एक-एक
जब देखा खिलता रंग नया।

गीतक छन्द

सुन अकल्पित कल्पना यह, राम दुखित हो गए,
खिन्न मन विश्राम गृह मे क्लान्त होकर सो गए।
ज्वार विविध विचार के हृदयाब्धि में आने लगे,
लहर बनकर ओष्ठ तट से शब्द टकराने लगे।

दोहा

ऐसे कैसे लोग ये करते हैं बकवास।
सहसा हो सकता नहीं कानों को विश्वास।

*सुन के छिछले लोगों की ऐसी बात,
सीता को ऐसे कैसे छोड़ दूं।
होता चिन्तन से मन पर वज्राघात,
उस कल्प-लता को कैसे तोड़ दूं।

बोल रहा है स्वयं शील, जिसके जागृत जीवन में।
शौर्य झलकता है सतीत्व का, दीप्त युगल लोचन में।

*लय—मन्दिर में कांई ढूंढती फिरै

रावण क्या सुरपति भी आए तदपि न विचलित होती।
मेरा हृदय दे रहा साक्षी, अटल पतिव्रत ज्योतिः।

तो फिर यों अपवाद भयंकर क्यों जनता में छाया।
कुछ न समझ में आता, किसने भारी भ्रम फैलाया।

कहते है जो चर, उसमें भी झलक रही सच्चाई।
बिना सत्य हार्दिक दुख इतना देता नहीं दिखाई।

उनके कहने से क्या हो, जो कहते सुनी-सुनाई।
शत प्रतिशत है सती जानकी संशय है ना पाई।

पर-घर नाशक लोक-बोक ये सही बात क्या जानें।
बिना विचार किये औरों पर कसते तीखे ताने।

नहीं कभी भी सीता मन से पर की बांछा करती।
उलट जाय चाहे अम्बर भी, पलटे चाहे धरती।

होने को क्या, होनी सम्भव हर मानव की गलती।
क्या न पथ-च्युत हो जाती है गाड़ी चलती-चलती।

ऐसी भूल करे वैदेही बात न जचती मन में।
मैं तो परख चुका हूं जिसको अपने सह जीवन में।

प्रलोभन में आकर चर, ये इधर-उधर हो सकते।
या भड़काये जाने पर भी मानवता खो सकते।

*आवश्यक अब मैं ही जाऊं,
सत्य स्थिति का पता लगाऊं।
करके अति विश्वास पराया,
कितनों ने ही धोखा खाया।

* लय—सो ही रे सयाना

है सीता प्राणों से प्यारी,
सती गुणवती वह सन्नारी।
फिर क्यों ये झूठी चर्चाएं,
जन-मानस में आशंकाएं।

मैं इसका निष्कर्ष निकालूं,
कानों में यों तैल न डालूं।
करूं आज ही निर्णय सारा,
रोकूं इस विप्लव की धारा।

है प्रवाह गडरी जनता का,
अस्थिर ज्यों शिखरस्थ पताका।
क्षण में इधर-उधर हो जाती,
नहीं सही चिन्तन कर पाती।

दोहा

तमा अमा की यामिनी पहने कपड़े श्याम।
एकाकी तलवार ले निकल पड़े श्रीराम।

*घूमते गली-गली, आज अकेले राम।
एक ही हवा चली, नहीं राम में राम।

जहां जाते सुनते वही, वे राम नाम बदनाम।
घूमते गली-गली, आज अकेले राम।

मानो जनता के रहा हो और न कोई काम।
खुली निन्दा कर रहे सब ले सीता का नाम।

हाय! कलंकित हो रहा है सूर्यवंश अभिराम।
दुराचारिणी के बने हैं रघुकुल-तिलक गुलाम।

* लय—हरि गुण गायले

उसमें ही आसक्त वे रहते है आठों याम ।
जिसने लंका में किया छ-छ मासिक आराम ।

नही समझते है अभी आगे का दुष्परिणाम ।
समझे भी कैसे, कहो जब होता है विधि वाम।

दोहा

ज्योंही कुछ आगे बढ़े खिन्न मना रघुनाथ ।
सहसा कानों में पड़ी गृह-माता की बात ।

† हो निवृत्त सारे कार्यो से बैठा है सन्मुख परिवार,
ाबको सत् शिक्षा देती है, बुढ़िया करती प्यार-दुलार ।
ाखो सावधान रहना, रखना कुल-मर्यादा पर ध्यान,
इधर-उधर हो मत बन जाना कोई सीता-राम समान ।

रही नही कोई मर्यादा, रहा नहीं कोई आचार,
पत्नी के पीछे पागल बन राघव ने लोपी कुल-कार ।
सर्वेसर्वा बने हुए, कोई न टोकने वाला है,
मन चाहे ज्यों करो, उन्हें कोई न रोकने वाला है ।

महासती का जामा पहने, कभी न पतिता छिप सकती,
कितना धोओ, काक-कालिमा नही कभी भी धुल सकती ।
सती-साध्वियां और रानिया बैठी-बैठी रोती है,
उल्टा युग आया देखो, कुलटा पटरानी होती है ।

जिसके इगित पर ही रघुवर एक-एक डग भरते है,
अपने प्राणों से भी बढकर प्यार हृदय से करते हैं ।
पर वे देवीजी रावण के चरणों की पूजा करती,
इन पापाचारों से कैसे टिक पायेगी यह धरती ।

रामायण

दोहा

दे कानों में अंगुली, ले लम्बा निश्वास।
चले राम सहसा रुके, वृद्धजनों के पास।

* देखो भाई! दीख रहे हैं कलियुग के आसार रे।
राजघराने में भी पलते ऐसे पापचार रे।

नई हवा की लहर राम पर सबसे ज्यादा आई,
घुमा वनों में साथ-साथ उसको आजाद बनाई,
बेचारी बूढ़ी माताएं तो करती रहीं पुकार रे।
देखो भाई! दीख रहे है कलियुग के आसार रे।

यों उच्छृंखल रहने वाली, मर्यादा क्या जाने?
कुल की आन और घर की उज्ज्वलता क्या पहचाने?
रावण के साथ रहा निश्चित उसका अनुचित व्यवहार रे।
देखो! भाई दीख रहे है कलियुग के आसार रे।

मनमानी मौजें कीं, सोचो! कौन देखने वाला,
दशरथ नृप होते तो कभी न लगने देते काला,
घर में भी पैर न रखने पाती, बिना करे प्रतिकार रे।
देखो भाई! दीख रहे है कलियुग के आसार रे।

राम-राज्य में बूढों की तो होती नही सुनाई,
भले, अनुभवी, विज्ञ, विवेकी सबको मिली विदाई,
हां में हां भरने वालों की, ही बनी आज सरकार रे।
देखो भाई! दीख रहे हैं कलियुग के आसार रे।

---

* लय—कोटि-कोटि कंठों से गाएं

दोहा

चुपके से चलते बने, करते ऊहापोह।
आगे आया सामने, युवकों का विद्रोह।

* अब अधिक न चलने पायेगा
मनमाना अत्याचार यहां,
अब अधिक न चलने पाएगा
सीता का पापाचार यहां,
यह बडे खेद की बात अभी तक
खुले राम के कान नहीं,
वह राजा क्या जिसके घर का
हो जनता में सम्मान नहीं।

वह शासक क्या जिसके घर
में भी हो ऊंचा आचार नहीं,
वह न्यायी क्या जिसके घर
अन्यायों का प्रतिकार नहीं,
साकेत भूमि यह है जिसमें
अधिकार प्रजा को भी सारे,
जो न्याय-नीति के साथ चले
वे ही नृप प्राणों से प्यारे।

पथ से होते जो इधर-उधर
बस समझो उनकी खैर नहीं,
घटना सौदास नरेश्वर की
हमको करती आह्वान यही,
अपनी इस मातृभूमि पर हम
अन्याय नहीं होने देंगे,

---

* मदनारणी

भारत के गौरव को खोकर
सोए न, कभी सोने देंगे।

गीतक छन्द

जहां मिलते एक से दो, बात करते है यही,
आजकल की नई चर्चा, सुनी तुमने या नहीं ?
कौनसी ? क्या उसी सीता के लिए तुम कह रहे,
चित्र ! कैसे राम जन-अपवाद इतना सह रहे ?

आज घर-घर में बना यह विषय वार्तालाप का,
पूर्ण भर कर घड़ा आखिर फूटता है पाप का।
बड़े घर की बात भाई ! कहें तो किसको कहें ;
यही अच्छा है अपन तो, मौन होकर ही रहें।

अयश सुन-सुन राम के तो कान बहरे हो गए,
दु:ख से घायल हृदय के घाव गहरे हो गए।
चलू पुर बाहरा जरा, गतिविधि वहां की झांक लू,
अल्प शिक्षित निस्व: जन की, भावना भी आंक ल।

दोहा

पहुंचे आधी रात को राम वहां सविषाद।
धोबी-धोबन में जहां, चलता वाद-विवाद।

* धोबी झटपट खोल।
खोल-खोल दरवाजा,
बाहर खड़ी अकेलो रे।
नहीं है साथ सहेली रे,
धोबी झटपट खोल।

---

* लय—पनजी मंडै बोल

प्रतिदिन ऐसे नाटक करना यह क्या तेरी शैली रे,
तुझे पता क्या इससे बढ़ती बैल विषैली रे,
उलझती और पहेली *रे।

कितनी देर हुई, आवाजें मैंने कितनी दे ली रे,
अब तक जगा न, लगता बोतल अधिक उंडेली रे,
(या) बूटी ज्यादा ले ली रे।

देना व्यर्थ दुःख अबला को यह क्या आदत मैली रे,
या घर में बिठलाई कोई नई नवेली रे,
रूप रमा अलवेली रे।

जा तू आई जहां, जा तू आई जहां,
तेरे लिए नही स्थान यहां।

अपनी कुल मर्यादा भूल,
कुलटा खाती घर-घर धूल,
फिरती रहती जहां-तहां।
तेरे लिए नही स्थान यहां।

जान चुका सब तेरे चरित्र,
होने न दूगा घर अपवित्र,
(कह) इतनी देर लगाई कहां ?
तेरे लिए नहीं स्थान यहां।

† तू क्या जाने नगर सेठ की कितनी दूर हवेली रे,
घण्टों बैठी रही वहां, तब मिली अधेली रे,
और यह गुड़ की भेली रे।

---

* लय—ऐसो जादुपति
† लय—पनजी मुंडै बोले

झूठी धौंस जमाता मानो सौंपी हो कोई थैलो रे,
तेरे साथ सदा से ही विपदाएं झेली रे,
फट गए पांव-हथेली रे।

पतिता रहने दे बकवास,
जा उस नव प्रियतम के पास,
होगा तेरा सम्मान वहां,
तेरे लिए नहीं स्थान यहां।

† तेरी मां, दादी, नानी की महिमा घर-घर मे फैली रे,
किस मुह से दे रहा चुनौती कटुक कसली रे,
(हूं) मैं भी चतुर चमेली रे।

दोहा

बक-झक कर क्यो कर रही मेरी नीद खराब।
निकल यहां से पापिनी सौ का एक जबाब।

‡ बोल जरा सम्भाल वदन से, छाती पर रख हाथ विचार,
इस घर में तेरे समान ही है मेरा पूरा अधिकार।
देखा तेरा उच्च घराना, देख लिया तेरा कुल-वंश ?
अरे! राम से भी ऊचा क्या है, कोई मानव अवतश ?

नही सुना क्या उनके घर में सीता का कितना सम्मान ?
पूज रही है जो रावण के चरण मान करके भगवान
तू बेचारी किस गिनती में बोल रहा बढ़-बढ़ क्या बोल ?
बस रहने दे डीग हाकना, उठ, झटपट दरवाजा खोल।

---

* लय—ऐसो जादुपति
† लय—पनजी मुडे बोल
‡ रामायण

दोहा

री ! पापिन ! क्यों कर रही मुझे राम के तुल्य ?
जिसने पत्नी के लिए खोया अपना मूल्य ।

* है खबरदार जो यहां दूसरी
बार राम का नाम लिया,
जिसने राजा होते ही इस
सिंहासन को बदनाम किया,
भयभीत बड़ा वह कायर है
पत्नी का मोह न छोड़ सका,
उस दुराचारिणी से अपना
किंचित् सम्बन्ध न तोड़ सका ।

होती मेरे घर ऐसी तो
तत्क्षण ही मैं ठुकरा देता,
घर से निकाल बाहर करता
लातों से जीवन ले लेता,
यदि मुझे राम की उपमा दी
तो मारे बिना न छोड़ूंगा,
आगी से बदन झुलस दूंगा
शिर भिड़ा भींत से फोड़ूंगा ।

दोहा

अब न वहां पर टिक सके एक पलक भी राम ।
सीधे जा विश्राम-गृह में पाया विश्राम ।

नाणी

: ३ :

परित्याग

गीतक छन्द

विश्व-वातावरण सारा तम निमज्जित हो रहा,
जन-समूह अनूह निशि के व्यूह में था सो रहा।
टिमटिमाते तारकों की क्रान्ति ज्योति-विहीन थी,
प्रकृति ध्वान्तावरण में तल्लीन सर्वाङ्गीण थी।

अभ्र, अवनी, सर, सरोरुह, श्रान्त-शान्त नितान्त थे,
सरित्, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्भ्रान्त थे।
विहग, पन्नग, द्वय-चतुष्पद, सर्वतः निस्तब्ध थे,
हुई परिणत गति स्थिति में, शब्द भी निःशब्द थे।

किन्तु राघव का हृदय आन्दोलनों से था भरा,
घूमता आकाश ऊपर, घूमती नीचे धरा।
तल्प-कोमल, निशित सायक तुल्य-दुःखद लग रही,
स्वयं उनको हा! स्वयं की भावनाएं ठग रही।

* कर्मों की कैसी माया,
मैं अब भी समझ न पाया।
हा! कितना कष्ट उठाया,
कर्मों की कैसी माया।

राजपाट को छोड़ प्रवासी,
वर्षों बना फिरा वनवासी।
हा! सूख गई यह काया,
कर्मों की कैसी माया।

* लय—करमन की रेखा

लम्बा विरह सहा नारी का,
ज्यों आघात महामारी का।
क्या विधि ने जाल बिछाया,
कर्मो की कैसी माया।

पागल की सी कर-कर बातें,
रो-रो काटी कितनी रातें।
वह अंकित है प्रति-छाया,
कर्मो की कैसी माया।

करदी कितनों को कुर्बानी,
रण में खून बहा ज्यों पानी।
रावण को मार गिराया,
कर्मो की कैसी माया।

सीता को घर लाया अपने,
देख रहा था सुख के सपने।
हा! यह दुर्दिन क्यो आया,
कर्मो की कैसी माया।

गीतक छन्द

सोचलू अब कौनसा पथ मुझे लेना चाहिए,
(क्या) जन-कलंकित जानकी को छोड़ देना चाहिए।
मोह मन में मैथिली का, इधर जन-विद्रोह है,
किसे छोड़ू ? क्या करूं ? कर रहे ऊहापोह हैं।

हो उपेक्षा प्रजा-जन की, कार्य अव्यवहार्य है,
अतः उस पर ध्यान देना हो गया अनिवार्य है।
सूर्य-कुल का सदा गौरवमय रहा इतिहास है,
क्षम्य उसमें नहीं, यह मालिन्य का आभास है।

उग्र लोक-विचार ये दबने न पाएंगे अभी,
बिना पलटे हृदय पड़ने का प्रभाव नहीं अभी।
अतः सीता को गहन में छोड़ देना चाहिए,
मोह के इन बन्धनों को तोड़ देना चाहिए।

लोक-हित के सामने, हित प्रेयसी का गौण-सा,
अब रहा अतिरिक्त इसके दूसरा पथ कौन-सा।
बैठते-सोते कभी वे बोलते उद्वेग में,
हो रहे हैं कवि हृदय की कल्पना के वेग में।

दोहा

निशि का दुःखद दृश्य वह रहा हृदय को तोड़।
अंगड़ाई लेकर उठे रघुवर शय्या छोड़।

उदित प्रकम्पित-सा अरुण, अरुण अभ्र को चीर।
देख अनिष्ट उदर्क यह, निष्प्रभ हुआ शरीर।

लगते हैं असुहावने विहगों के कल गीत।
पावन दृश्य प्रभात का आज हुआ अस्फीत।
क्रोध-क्लेश में कांपते आए बाहिर राम।
कर सत्वर सोद्विग्न मन सब आवश्यक काम।

सामन्त्रण अर्हित सभ्यों की बुलवाई आन्तरिक सभा,
सन्न रह गए सभी सभासद देख राम की उग्र प्रभा।
रंग उतर आया आंखों में, अंग हो रहा अस्त-व्यस्त,
शब्द न कोई बोल सका, बैठे निम्नानन मौन समस्त।

दोहा

ओष्ठ काटते दसन से बोल उठे अवधेश।
अपने मन में कर चुका निर्णय एक विशेष।

* रामायण

'सौमित्री, सुग्रीव, विभीषण, सुन लेना हनुमान।
सीता को मैं छोड़ रहा हूं रखने कुल-सम्मान।

प्रजाजनों मे फैला है कितना मेरा अपवाद,
दूषित वातावरण हो रहा, भारी बढ़ा विषाद,
शासक कहलाते तुम सब, क्या दिया किसी ने ध्यान।
सीता को मै छोड रहा हू रखने कुल-सम्मान।

घर-घर में चर्चा है सीता का लाछित आचार,
सहन नही होते मुझसे ये तीखे शस्त्र-प्रहार,
करना होगा स्वय, स्वय के स्वार्थो का बलिदान।
सीता को मैं छोड़ रहा हू रखने कुल-सम्मान।

जान रहा हू, समझ रहा हूं, सीता है निर्दोष,
पर मैं विवश देखकर हू, यह जनता का आक्रोश,
अतः उक्त निर्णय पर पहुंचा, बन करके पाषाण।
सीता को मैं छोड रहा हू रखने कुल-सम्मान।'

दोहा

लक्ष्मण के दिल पर हुआ मानो विद्युत्पात।
भाईजो! क्यों कह रहे, यह असुहानी बात।

'भैया! राम! यों सीता को नही छोड़े।
विश्व-विश्राम! यों सीता को नही छोड़े।
नारी रत्न अमूल्य, शारदा तुल्य सयानी सीता।
गृह-लक्ष्मी, माधुर्य मूर्ति-सी, सद्गुण गौरव गीता।

सहज सुकोमल सरल, गरल को अमृत करती सीता
विषम परिस्थितियो में जो कभी नही भय-भीता।

---

* लय—मंगल आज मनाएं गाएं
† लय—छल्लो मैं नही छोडू

भाईजी ! मैं सच कहता हूं, महासती है सीता।
जिसके ही सतीत्व पर हमने लंका का रण जीता।

सूर्य, चन्द्र, अम्बुधि चाहे, अपनी मर्यादा छोड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी अटल पतिव्रत तोड़े।

चाहे बिना निर्जरा कोई कर्म-कटक को मोड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी अटल पतिव्रत तोड़े।

अभवी मुक्त बने, अलोक में चाहे पुद्गल दौड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी अटल पतिव्रत तोड़े।

साडम्बर जल-मंथन कर चाहे नवनीत निचोड़े।
तो भी कभी न जंचता भाभी अटल पतिव्रत तोड़े।

मेरु भले डिगे, पर सीता डिग न सकेगी प्रण से।
पूछो उसकी गौरव-गाथा लका के कण-कण से।

टुकड़े-टुकडे हृदय हो रहा, सुन बचपन की बातें।
सीता ! सीता कर रोते क्या ? भूल गए वे रातें।

होगा यह अन्याय, गई यदि महासती ठुकराई।
यों कहते-कहते लक्ष्मणजी की आंखें भर आई।'

दोहा

तमक उठा लकेश तब कौन कह रहा नाथ।
वैदेही के विषय में करले मुझसे बात।

* 'लंका का कण-कण बोल रहा
है महासती सीता माता।
लंका का जन-जन बोल रहा
है महासती सीता माता।

* लय—महावीर प्रभु के चरणों में

अथ से इति तक मैं वहां रहा,
क्या-क्या उसने आतंक सहा,
करता हूं जब मै स्मरण, मरण का भय-सा मन में छा जाता।

कैसे फटकारा करती थी,
कैसे ललकारा करती थी,
कैसे दुत्कारा करती थी, जब-जब सम्मुख रावण आता।

जगवद्या वह जगदम्बा है,
कुल की आधार स्तम्भा है,
उसके प्रति ऐसा चिन्तन क्यों, मै तो कुछ समझ नही पाता।'

दोहा

बोले कपिपति आर्यवर ! होकर चतुर चकोर।
किसके कहने से बने, इतने आप कठोर।

'ये लोक बोक है, इनकी बातों में आप न आइए।
यों बिना विचारे, ऐसा मत अनुचित कदम उठाइए।

लोगों का क्या ये तो गोबर के कीले के साथी।
नहीं अस्थियां रसना में यह इधर-उधर हो जाती।

लोक-कथन से डरने वाले जीवित रह ना पाते।
चढे और पैदल दोनो की, लोक मजाक उड़ाते।

भूल गए क्या वह दिन, जिस दिन मुझको था सुलझाया।
न्यायप्रिय ! अब अपने को ही यों कैसे उलझाया।

पत्नी चाहे कैसी भी हो, क्या जाती ठुकराई।
जिसमें ऐसी महासती जो इस घर की पुण्याई।

लय—म्हारी रस सेलड़िया

दुर्दिन आते तभी देव ! ऐसी दुर्मति है आती ।
गर्भवती, गुणवती सती, क्या वन में छोड़ी जाती ?

अतः नाथ से नम्र-निवेदन, चिन्तन करें दुबारा ।
उलटी-सुलटी बहती यों ही, यह जन-मत की धारा ।'

दोहा

होठों में करने लगे, राघव स्वर सन्धान ।
इतने में ही बीच में, बोल उठा हनुमान ।

* 'सबको तो प्रभु ने पूछ लिया
क्यों मुझे पूछना भूल गए,
जाकर लंका में प्रथम बार
ला मैंने ही संवाद दिये,
देखा मैंने इन आंखों से
जब राम-राम वह करती थी,
अलकें बिखरी थी गालों तक
टप टप टप आंखें झरती थी ।

जब गिरी मुद्रिका गोदी में
उस समय दृश्य कुछ और मिला,
सवाद दिया जब प्रभुवर का
मानों वह मुरझा सुमन खिला,
जब आई मन्दोदरी वहां
किस तरह उसे भी फटकारा,
इस नारी के आगे न कभी
टिक पाता रावण बेचारा ।

---

* सहनाणी

अपने संस्मरणों के द्वारा
मै बतलाता हूं स्पष्ट विभो !
उसके तो लक्षण न्यारे ही
होती जो स्त्री पथ-भ्रष्ट विभो !
सीता के लिए कडी से भी
मै कडा शपथ खा सकता हू ,
इसके सतीत्व को सप्रमाण
जब चाहे बतला सकता हू ।

जो बिना विचारे लोगों के
कहने से कदम उठाते है ,
वे मेरे पूज्य पितामह ज्यों
आखिर रोते पछताते है ,
सहनाणी दिखलाने पर भी
मेरी माता का बहिष्कार ,
कहता है उद्धत बन न करो ;
अबला का ऐसे तिरस्कार ।'

दोहा

किंकर्तव्य विमूढ़ से बोल उठे श्रीराम ।
क्या तुम सब को पूछने का यह है परिणाम ।

'मैं सीता को छोड़ूंगा चाहे कुछ भी हो जाए ।
निश्चय न बदल पाएगा चाहे जो उलझन आए ।

क्या कहते हो तुम, सबसे ज्यादा मैं जान रहा हूं ,
निर्दूषण भूषण-कुल की है यह भी मान रहा हूं ,
मैं क्या कोई बालक हूं, मेरा भी कुछ चिन्तन है ,
कर लिया पूर्णत: मैंने अन्वेषण, अनुशीलन है' ,

* लय—तू बता-बता रे कागा

सुनकर यह अन्तिम निर्णय सबके मानस मुरझाए।
मैं सीता को छोड़ूगा चाहे कुछ भी हो जाए।

दोहा

चुभे हृदय में ये वचन, जैसे तीखे तीर।
आ करके कुछ जोश में, बोले लक्ष्मण वीर।

* 'कुछ सोचो विचारो रे! हृदय पर हाथ धरो।
थोडी गरमी उतारो रे! मेरा विश्वास करो।

करता हू मै अभी-अभी अपवाद प्रजा का बन्ध,
जो न करूं तो आर्य! आपके चरणों की सौगन्ध,
द्वन्द्व में मत उतरो।

जो कोई भी कही करेगा एतद् विषयक बात,
प्राण-दण्ड दूगा मै उसको निश्चित निर्व्याघात,
बात यह मत विसरो।

गए शहर में आप मुझे तब क्यो न ले गए साथ,
बक-बक करने वालों को दिखला देता दो हाथ,
भ्रात कर्तव्य स्मरो।

जनता के पीछे क्या हम हो जाएगे बरबाद,
शान्त चित्त हो, दूर हटाओ, अब अपना उन्माद,
विषाद विवाद हरो।

कहे-कहे करते रहने से क्या चलता है राज्य,
किस-किस का मुह देखे, हमें चलाना है साम्राज्य,
प्राज्य सुख सुयश वरो'।

---

* लय—शर बाधे कफनवा रे

दोहा

'यों न दबाना है उचित सार्वजनिक विद्रोह।
अच्छा है हम छोड दे सीता का ही मोह।

सेनाध्यक्ष कृतान्तमुख ! जा, कर तू यह काम।
वन मे उसको छोड़ आ, यो बोले श्रीराम'।

सोरठा

भर नयनों में नीर, राघव का मुंह ढाकते।
बोले लक्ष्मण वीर, रे भैया ! क्या कर रहे ?

'ओ भैया ! मेरे ! भाभी को मत ठुकराओ,
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ,
कुल की ना ज्योति बुझाओ, बुझाओ।
भैया मेरे ! अबला की लाज बचाओ।

शीलवती है मेरी भाभी, सच्ची सती है मेरी भाभी
सद्गुण-गौरव सुख सम्पत-मय, जीवन के ताले की चाबी
इसको न यों ही गवाओ, गंवाओ

रो-रो पीछे पछताओगे, सच कहता हूं दुःख पाओगे
सीता ! सीता ! रटते-रटते, पूरे पागल बन जाओगे
पहिले ही मन को समझाओ, समझाओ

कहना मानो, अधिक न तानो, अपनी भावी को पहचानो
आगे चल क्या दुष्फल होगा, विज्ञ-विचक्षण उसको जानो
बिगडी को अब भी बनाओ, बनाओ

यों अनुतापित क्यों करते हो, क्यो यह अनुचित डग भरते हो
अन्तर-घर में जाकर बैठो, जो इस जनता से डरते हो
गुत्थी को अब मत उलभाओ, उलझाओ'

---

* लय—ओ भैया ! मेरे राखी के बन्धन को ...

दोहा

'चुप रह लक्ष्मण, क्या मुझे देता है तू सीख।
बोलेगा यदि और तो नहीं रहेगा ठीक।

अब न सुनूंगा एक भी अनुज ! किसी की बात।
गरज उठे राघव पुनः, मार धरा पर लात'।

क्रोध क्लेश से उद्वेलित हो अविरल आंसू बरसाए,
तत्क्षण लक्ष्मण छोड सभा को उन्मन, घर को आ पाए।
भाभी का अपमान इधर है, उधर ज्येष्ट है तात समान,
कभी न पहुचो जैसी, वैसी आज लगी है ठेस महान।

'क्या करता है रे ! कृतान्तमुख ! बैठा-बैठा अभी यहीं,
दी आज्ञा जो मैने, क्या तू ने कानों से सुनी नहीं ?
घोर विपिन में उसे छोड़ना, सहज बला टल जाएगी।
नही रहेगा बांस और बांसुरी न बजने पाएगी

दोहा

स्खलित चरण, कम्पित वदन, आकृति अधिक उदास।
पहुचा सेनानी सपदि महासती के पास।

'उपवन में आमोद से करने दोहद पूर्ण।
बुला रहे प्रभु आपको बैठो रथ में तूर्ण।'

ज्योंही चलने को सज्ज हुई,
फड-फड़ फड़का दक्षिण लोचन
यह क्या ? इस मंगल वेला में,
क्यो होते हैं ऐसे अशकुन,

* रामायण
† सहनागी

होने दो मेरा क्या लेंगे
जब बुला रहे है प्राणेश्वर,
कुछ चिन्तित-सी, कुछ विस्मित सी,
सीधो बैठी रथ में आकर।

गीतक छन्द

समझ कुछ पाई नही सीता शकुन-सकेत को,
बढ़ा स्यन्दन शीघ्र गति से लाघता साकेत को।
नदी, नालों, पर्वतों को पार कर चलता गया,
सहज, सरल स्वभाविनी को दैव हा! छलता गया।

सिहनाद अरण्य गगा तीर पर रथ रुक गया,
व्यथित सेनानी सती के सामने आ झुक गया।
सजल पलकें, मूक वाणी, हृदय मुह को आ रहा,
फट रही छाती न कुछ भी जा सका उससे कहा।

दोहा

दारुण हृदय विलोक कर सीता रही अवाक।
'सेनानी! क्या हो रही मेरे साथ मजाक।

अरे! बोलता क्यों नही, बना किधर है राम।
मुझे कहां लाया यहा, लेकर उनका नाम।'

* सेनानी शब्द न कह पाया
थर-थर करता, आहे भरता,
बोली वैदेही धीरज से
'भाई! तू ऐसे क्यों करता?
कहदे जो कुछ भी कहना है
डरने की कोई बात नहीं,

* सहनाणी

ऐसा लगता है भाग्यदेव
देते है मेरा साथ नही।

जब चली वहां से प्रथम-प्रथम
शकुनों ने मेरा पथ रोका,
क्या पता मुझे मिल जाएगा
यह अनायास ऐसा मौका,
जीवन में पहली बार हुआ
मेरे से यह विश्वासघात,
जो कुछ होना था हुआ भ्रात!
बतलादे अब तू सही बात।'

गीतक छन्द

'मा! मुझे करदो क्षमा, मै पूर्णतः परतन्त्र हू,
समझ लो बस राम के द्वारा प्रचालित यन्त्र हू।
भृत्य जीवन से भली है, मृत्यु हो ससार मे,
मैं नियन्त्रित यथा बन्दी बन्द कारागार मे।

नहीं कृत्याकृत्य कुछ भी सोच सकता भृत्य है,
जो कहे स्वामी वही बस कृत्य उसका नित्य है।
दृष्टि के विपरीत उसका, बोलना भी पाप है,
दासता मनुजत्व का सबसे बडा अभिशाप है।

दीन से भी दीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से,
हीन से भी हीन होना, श्रेष्ठ अपर अधीन से।
भली सूखी रोटियां, परतन्त्र के पकवान से,
भला है बलिदान, इस परतन्त्र के वरदान से।

दोहा

जिसको करते कांपने लगता है चाण्डाल।
वह करना पड़ता मुझे, विवश काम विकराल।

* 'बान्ध बान्ध कर अश्रु-तटी पर, बना हृदय पाषाण समान,
छोड़ रहा हूं यहां आपको मैं रघुवर की आज्ञा मान।'
'हैं ! क्या मुझे यहां छोडोगे ? हाय राम ! यह क्या आदेश,'
गिरी मूर्छिता हो स्यन्दन से सह न सकी व क्लेश विशेष।

दोहा

वैदेही को मृत समझ, रोता कर अनुताप।
मा ! तूने भी मढ दिया, मेरे सर यह पाप।

कौन सुने, किससे कहूं अपनी करुण पुकार।
परवश जीवन को अहो ! लाख-लाख धिक्कार।

सोरठा

सीता हुई सचेत, लगने से मृदु वन-पवन।
होकर पुनः अचेत, सहसा धरती पर गिरी।

दोहा

फिर सज्ञा पा पूछती, 'मेरा क्या था दोष ?
जिसके कारण राम ने किया भयंकर रोष।'

† 'आकर लोगो की बातो में प्रभु ने ऐसा कदम उठाया।
कोई क्या जाने माताजी ! जाने राम राम की माया।

पता नही किसने जनता में भारी भ्रम फैलाया।
लंका मे लाछित होने का मुधा कलंक लगाया।

रोषारुण हो अतः आपको इस वन में छुड़वाया।
हाय ! अभागे इन हाथों से यह अकृत्य करवाया।'

'क्या कलंकिता बना मुझे यों रघुवर ने ठुकराया।
लक्ष्मणजी क्या करते थे ? भाई को नहीं मनाया।'

---

* रामायण
† लय—दुनिया राम नाम नहि जाण्गे

'बातें कहीं नहीं कहने की, भान्ति-भान्ति समझाया ।
एक न मानी तो रोता अवरज अपने घर आया ।'

† 'ले चल मेरे को एक बार
कहनी है; उनको दो बातें,
ठुकराना था तो कर कलक मे
मुक्त खुशी मे ठुकराते,
क्या मैं कोई ऐसी-वैसी;
क्या मेरा कुछ अस्तित्व नहीं,
यह स्पष्ट दीखता है पुरुषों में
होता कुछ अपनत्व नहीं ।

यदि कुछ ममत्व मन मे होता
करते न कभी विश्वासघात,
क्यों हाथ पकड़कर लाए थे
जो निभा न सकते नाथ ! साथ,
सबकी सुनली पर बात जरा
मेरे से भी तो कर लेते,
विश्वास न होता तो पीछे
जो चाहे आप दण्ड देते ।'

दोहा

'वापिस जाने मे नहीं, माताजी ! कुछ सार ।
पत्थर के आगे सभी विनति है बेकार ।'

'मत ले चल, यदि राम का तुझे नहीं आदेश ।
पर कह देना तू उन्हे, यह मेरा सन्देश ।

---

† सहनाणी

नही कहेगा तो तुझे मेरी है सौगन्ध।
क्या मेरे सन्देश पर भी कोई प्रतिबन्ध ?

† मेरी आशा के अमर सहारे,
प्राणप्रिय नयन सितारे,
टूटे जीवन-तन्त्री के तार है,
हो स्वामी ! अबला का कौन कहो आधार है ?

मैने बान्ध रखी थी कितनी आगे की आशाए,
मन की मन में रही आज वे सारी अभिलाषाए,
अब मैं किसको क्या कहूं ; सुनाऊं ?
दु:ख के दिन कहा बिताऊं।
सूना-सूना लगता संसार है।

मै गौरव से भूल रही थी, मुझसी सुखी न नारी,
मेरे घर में तीन खण्ड की सत्ता, विभुता सारी,
भारी रघुवर से प्रियतम मेरे,
लक्ष्मण से देवर मेरे.
उमडा प्रभुता का पारावार है।

युगल पुत्र के जन्मोत्सव का देखा स्वप्न सुनहला,
होगी पूर्ण कामनाएं सब है यह अवसर पहला,
सबका समुचित सम्मान करूंगी,
जी भर कर दान करूगी,
कितना विस्तृत मेरा परिवार है।

माताओ की शुभाशीष का शुभ फल मुझे मिलेगा,
मुखरित मंगल गीतों से गृह-प्रांगण खूब खिलेगा,
होगा हर्षोत्सव भारत भर में,
अभिनव खुशियां घर-घर में,
वाद्यों-जयनारों की धुंकार है।

† लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

किन्तु आपने फेर दिया उन आशाओं पर पानी,
हाय ! भिखारिन आज बनादी जो कल थी महारानी,
कमी की है मेरे से छलना,
कलना इसकी करना दुश्वार है।

* राम कुछ भी न बिचारी रे!
क्या ऐसे ठुकराई जाती अबला नारी रे।
नाथ ! कुछ भी न विचारो रे!
बात कुछ भी न विचारी रे।

कहां सुखों मे पली, कली-सी राजदुलारी रे!
कहां अकेली भटकू वाह ! बालिम बलिहारी रे!

कहां स्वर्ग-सी सत्ता विभुता, प्रभुता भारी रे!
कहां अकेली भटकू वाह ! बालिम बलिहारी रे!

सब मेरे प्रिय थे, लगती मैं सबको प्यारी रे!
आज वसन भी बैरी, वाह! बालिम बलिहारी रे!

मन को थाह रही मन में सारी की सारी रे!
चढ़ा शिखर पर सीधी ही पाताल उतारी रे!

राम-राज्य में सभी सुखी, मैं ही दुःखियारी रे!
कौन सुने? मैं किसे कहू अपनी लाचारी रे!

† कितना अच्छा रहता थोड़ा पहिले बतला देते,
अपनी शंकाओं का समुचित समाधान कर लेते,
बोलो! इतना क्या मेरा भय था,
होता क्या महाप्रलय था,
किसने की खड़ी बडी दीवार है।

---

* लय—मनवा नांय विचारी रे
† लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

परम हर्ष होता यदि अपनी भूल समझ मै पाती ,
स्वीकृत करने में न कभी भी त्रिया चरित्र दिखाती ,
कोई अनशन उपवास न करती ,
करके अपघात न मरती ,
ऊचे कुल का ऊचा आचार है ।

अन्तर-घर मे क्यो न मार डाला अपने हाथो से ,
क्यों लांछित कर छोड़ी ऐसे लोगों की बातों से ,
मेरी इज्जत में धूल मिलाई ,
सचित सब आब गमाई ,
पुरुषों का कैसा अत्याचार ?

हाय राम ! क्या नारी का कोई भी मूल्य नही है ,
क्या उसका औदार्य, शौर्य पुरुषों के तुल्य नही है ,
उसने ऐसा क्या पाप किया है ,
किसको सताप दिया है ,
जिससे मिलती पग-पग दुत्कार है ।'

दोहा

यों आहें भरती हुई, फेंक रही नि:श्वास ।
देख रही धरती कभी और कभी आकाश ।

कभी मौन हो सोचती, टिका हाथ पर शीश ।
कभी चीख में निकलती, अन्तर मन की टीस ।

री सीता ! क्यों कर रही व्यर्थ राम पर रोष ।
वास्तव में तेरे सभी कृत-कर्मो का दोष ।

* क्या है इस जीवन मे, यों दु:ख ही दु:ख पाना ?
तिल-तिल जल-जल मन में, रो-रो-कर मर जाना ?

* लय—सेवो तूलसी महाराणा

था जन्म लिया जब से,
भाई बिछुड़ा तब से,
आए संकट नाना, क्या है इस जीवन में।

परिणय की शुभ वेला,
उसमें भी दुःख झेला,
क्या उसका बतलाना ? क्या है इस जीवन में।

भटकी मैं जंगल में,
वर्षो तक जल-स्थल में,
है किससे अनजाना, क्या है इस जीवन में।

हा ! मेरा हरण हुआ,
जीवित ही मरण हुआ,
महाभीषण रण ठाना, क्या है इस जीवन में।

जब इतना दुःख भोगा,
अब तो कुछ सुख होगा,
यह मैंने था माना, क्या है इस जीवन में।

टूटे सारे सपने,
कोई न रहे अपने,
अब क्या होना जाना, क्या है इस जीवन में।

† जो होना वह होगा मेरा कोई सोच नही है,
(पर) गर्भ-सुरक्षा करू कहां, बस चिन्ता एक यही है,
अब मैं जाऊं भी तो कहां जाऊं ?
कैसे ये प्राण बचाऊं ?
दो-दो बच्चों का पूरा भार है।

लय—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है

प्रजापाल भूपाल खूब अपना कर्तव्य निभाया,
भावी पीढ़ी को भावुक बन भारी पाठ पढ़ाया,
मन में मेरी मत चिन्ता करना,
रो-रो आंखे मत भरना,
बस अपना इतना ही सस्कार है।

दोहा

रे कृतान्तमुख ! है यही मेरी अन्तिम बात।
कहना सविनय राम से, भूल न जाना भ्रात।

† रवि ने त्यागी है प्रखर-प्रभा,
शशधर ने शीतलता छोड़ी,
अम्बुज ने अपने सौरभ से,
नभ ने ध्वनि से मैत्री तोड़ी,
क्या पता कौनसे पूर्वार्जित
कर्मो की भीषण मार हुई,
की नही कल्पना जिसकी भी
वह आज स्पष्ट साकार हुई।

अनभिज्ञ रही मै इतने दिन
वह बात नाथ! अब जान गई,
बहकावे में आ परित्याग
करना अपनाई प्रकृति नई,
इस नव्याविष्कृत शैली का
मेरे पर प्रथम प्रयोग हुआ,
इन अविच्छिन्न सयोगों का
पल भर में हाय! वियोग हुआ।

† सहनाणी

पर नास्तिकता के भ्रमर जाल में
आप कहो मत आ जाना,
मिथ्या तत्त्वों के चंगुल में
फंस सत्य-धर्म मत ठुकराना,
चल सकता मेरे बिना काम;
पर नही चलेगा धर्म बिना,
सुख-शान्ति-सम्पदा सुर तरुवर
यह नही फलेगा धर्म बिना।

मेरी अनुपस्थिति में कृपया
प्राणेश्वर! बने रहें धार्मिक,
जीवन में कभी नही भूले
हृदयेश्वर! ये बातें मार्मिक,
है आप सूर्य कुल कमल सूर्य,
वैडूर्य तुल्य नव ज्योतिर्धर,
हो चिरजीव जय-विजय वरें,
आनन्द करें भारतशेखर।

लक्ष्मण को कहना शुभाशीष,
रखना अधीश का पूर्ण ध्यान,
वे ही तो अपने सब कुछ हैं
तुम स्वयं विज्ञ हो विनयवान,
मेरे पर सत्य सहानुभूति
इस संकट स्थिति में दिखलाई,
उसका आभार भार मन पर
जीवन भर क्या भूलू भाई!

† मेरी सारी प्रिय बहिनों को यथायोग्य कहना सोल्लास,
प्रभु के इंगित पर सब चलना करना प्राप्त पूर्ण विश्वास।
'क्षमत-क्षमणा' सबसे मेरा, जाना सकुशल स्वामी पास,
कहती-कहती गिरी धरा पर फेंक एक लम्बा निःश्वास।

●

---

† रामायण

: ४ :

अनुताप

गीतक छन्द

विषम वन की वीथिका पर जाल कांटों के पड़े,
रोकने चलते चरण को व्यग्र हो वैसे खड़े।
भयोत्पादक विकल-सी वे तुमुल कल-कल नादिनी—
बह रही उन्मत्त नदियां विविध भावोत्पादिनी।

गहन झंगी, शिखर जंगी, पूर्ण तम का राज्य है,
सघन सावन घन घटा से हो रहा वह प्राज्य है।
हृदय में सौदामिनी उत्पन्न करती सनसनी,
चल रहा शीतल पवन, ज्यो प्रेयसी हो उन्मनी।

बारिदों के व्यूह से लगती सुनील वनस्थली,
आत्म-गुण को यथा आवृत कर रही कर्मावली।
भटकती व्याकुल मृगी ज्यों, हा! अकेली जानकी,
है न कोई भी सहारा, बस शरण भगवान् की।

दोहा

भय-भ्रान्त-सी भामिनी भरती है डग एक।
फिर रुक जाती, सामने वन्य जन्तु को देख।

सघन विटप के वक्ष मे छुपती है ले ओट।
आहत हो गिरती कही, खा पत्थर की चोट।

गीतक छन्द

वन-विडाल, शृगाल, शूकर हैं परस्पर लड़ रहे,
द्विरद मद झरते कही दन्तूशलों से भिड़ रहे।

प्रबल पुच्छाच्छोट करते कही मृगपति घूमते,
भेडिये, भालू भयंकर, घोर श्वापद झूमते।

दोहा

सती ढूढ़ती फिर रही, कही सुरक्षित स्थान।
म्लान मना, निम्नानना, कांप रहे हैं प्राण।

जाए तो जाए कहां, कौन सुने चित्कार।
अपने इस नारीत्व को देती है धिक्कार।

छन्द

अपमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन,
अरमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन।
अभियानों से डरा हुआ है नारी-जीवन,
बलिदानों से घिरा हुआ है नारी-जीवन।

नारी का अस्तित्व रहा नर के हाथों में,
नारी का व्यक्तित्व रहा नर के हाथों में।
नारी का अपनत्व रहा नर के हाथों में,
नारी का सब सत्व रहा नर के हाथों में।

पुरुषों में नारी का कोई स्थान नही है,
पुरुषों में नारी का कोई मान नही है।
पुरुषो का नारी पर कुछ भी ध्यान नही हैं,
इसीलिए कर पाती वह उत्थान नही है।

जिसने दु:ख में भी पुरुषों का साथ निभाया,
अर्धाङ्गिनी रही नित तन के पीछे छाया।
पर, पुरुषों ने यह उसका आभार चुकाया;
सुख में जूठी पत्तल ज्यों उसको ठुकराया।

अबला उसे बनाकर रखा अधिकारों में,
जकड़ लिया हा! कृत्रिम लज्जा के तारों में।

पलने नही दिया निसर्गज संस्कारों में,
फलने नहीं दिया यदृच्छा व्यवहारों में।

है पुरुषों के लिए खुली यह वसुधा सारी,
पर नारी के लिए सदन की चारदिवारी।
सूर्य देखना भी होता महाभारत भारी,
किसे कहे अपनी लाचारी, वह बेचारी।

मार मार वह अपने मन को सब कुछ सहती,
जैसा होता, नही किसी से कुछ भी कहती।
चिन्ता सदा चिता बन उसको दहती रहती,
व्यथा हृदय की छल-छल कर पलकों से बहती।

पुरुष-हृदय पाषाण भले ही हो सकता है,
नारी-हृदय न कोमलता को खो सकता है।
पिघल-पिघल उनके अन्तर को धो सकता है,
रो सकता है, किन्तु नही वह सो सकता है।

जिसने जन्म दिया है, अपना दूध पिलाया,
स्वय दु खिता रह पुरुषों को सुख पहुंचाया।
समय-समय वीरत्व जगा सम्मान बचाया,
हा ! उसको ताड़न का अधिकारी ठहराया।

चल न सकेगा पुरुषों ! अत्याचार तुम्हारा,
पल न सकेगा पुरुषो ! पापाचार तुम्हारा।
फल न सकेगा पुरुषों ! दुर्व्यवहार तुम्हारा,
छल न सकेगा पुरुषों ! झूठा प्यार तुम्हारा।

नारी क्या तेरे में भी कुछ ज्ञान नहीं है ?
नारी क्या तेरे में भी कुछ भान नही है ?
नारी क्या तेरे में अपना मान नहीं है ?
क्या तेरे चिन्तन में कुछ भी प्राण नहीं है ?

अपने बल पर नारी तुझे जागना होगा,
कृत्रिम आवरणों को तुझे त्यागना होगा।
खो सन्तुलन भीत हो नहीं भागना होगा,
सत्य क्रान्ति का अभिनव अस्त्र दागना होगा।

दोहा

यों चिन्तन करते विविध जाग उठा वीरत्व।
लगा वदन में झलकने वह सतीत्व का सत्व।

† अनजाने अति बीहड़ पथ पर
आगे से आगे सती चली,
कांटों ने वींधे चरण युगल
शोणित की धारा सी निकली,
उस झांय-झांय करती झंगी—
में मानव का तो नाम नहीं,
भीषणता बढ़ती जाती है
कायर मन को विश्राम नहीं।

करती है कभी आत्म-चिन्तन
अन्तर आवेग हटाने को
रटती जाती है 'णमुक्कार'
महामन्त्र शान्ति सुख पाने को
अरिहन्त सुगुरु सद्धर्म बिना
है कोई भी अब त्राण नहीं
डिग जाता ऐसी स्थितियों में
जिसकी श्रद्धा सप्राण नहीं

उस देख विलखते आनन को
सारी वनस्थली रोती है,

---

† सहनाणी

उन विकल वन्य जीवों के भी
मानस में पीड़ा होती है,
करने वे मूक सहानुभूति
सब घेर सती को लेते है,
कर रहे प्रदर्शित सहज स्नेह
संक्लेश न किंचित् देते है।

तरु-वल्लरियों से घिरे सघन--
कुजों में रात बिताती है,
अनुकूल फूल, फल तोड़-तोड़
जो मिलते उनको खाती है,
जब मन अति उद्वेलित होता
बरबस रोती-चिल्लाती है,
होते ही स्मरण गर्भ का फिर
रोती-रोती रुक जाती है।

दोहा

होता है अति दुःख के पीछे सुख-सचार।
अत्युष्मा में दीखते वर्षा के आसार।

दूर दिखाई पड़े सती को कुछ सशस्त्र मानव आते,
जिधर स्वयं है, उधर वे सभी अविरल गति बढते जाते।
होगा यहां दस्यु-दल कोई, जो आता है मेरी ओर,
आने से पहिले ही रख दू सम्मुख गहने सभी बटोर।

दोहा

यों चिन्तन कर आभरण तत्क्षण दिये उतार,
उच्च स्वर रटने लगी महामन्त्र नवकार।

* रामायण

अरिहन्ते, सिद्धे, साहू, धम्मं शरणं सुपवज्जामि
विघ्न-हरण, मगलमय तेरा स्मरण सदा अन्तर्यामी
वन में आई फिर भी अब तक नहीं आपदा का अवसान
क्या जाने क्या होना बाकी, अब भी मेरा हे भगवान्

गीतक छन्द

त्वरित गति से इधर वे सन्नद्ध सैनिक आ गए,
इंगितों से लगा ऐसा लक्ष्य को वे पा गए।
दूर रहना, धन पड़ा, ले लो तुम्हें जो चाहिए,
कहा नायक ने बहिनजी ! आप मत घबराइए।

दोहा

कौन आप ? कैसे यहां ? क्या है पावन नाम ?
परित्याग यों आपका, किस निष्ठुर का काम ?

हिसक, डाकू, नीच जन, बसते चारों ओर।
श्वापद-सकुल अति विकट 'सिहनाद' वन घोर।

गर्भवती लगती सती प्रसव-काल आसन्न।
बहिन ! कहो इतिवृत्त सब, मत रखना प्रच्छन्न।

सोरठा

नही खोलती मौन, सती शान्त सब सुन रही ?
पता नही ये कौन ? दु:ख कहूं कैसे इन्हें ?

सुख-दुख उनके पास, निर्भय कहते सुज्ञ-जन।
जिनके प्रति विश्वास, होता आत्मा में अटल।

---

* रामायण

* बोला मधुर स्वर मन्त्रीश्वर
मां ! पूर्णतया निश्चिन्त रहो,
ये पुडरीक पुर के स्वामी
इनके आगे सब स्पष्ट कहो,
है दयावान् धार्मिक शासक
न्यायी, सुविवेकी, महाभाग,
पर-प्रिया-बन्धु अपने उज्ज्वल
कुल पर न लगाया कभी दाग।

आए करने मृगया वन में
सुन पड़ा आपका आक्रन्दन,
तत्क्षण करुणार्द्र नरेश्वर के—
मानस में हुआ सहज स्पन्दन,
ऐसे संकट में देख कहो
किसका होता दिल द्रवित नही,
आवश्यक सारे काम छोड़
नरवर को आना पड़ा यही।

दोहा

हुआ परम सन्तोष सुन ये बातें विश्वस्त।
वैदेही कहने लगी स्वस्थ-मना आश्वस्त।

दोनों अंखियां सजल,
टूटा धीरज का बल,
गद्गद् वाणी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

† सहनाणी
* लय—गम दिए मुस्तकिल

मैं हूं मिथिला की राजदुलारी,
जनक विदेहा की पुत्री प्यारी,
सातों सुख मे पली,
कोमल कुसुम कली,
वाह ! पुण्यवानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

राजा दशरथ के घर में ब्याही,
विभुता प्रभुता मिली मन चाही,
वासुदेव प्रवर,
लक्ष्मण मेरे देवर,
हूं राघव रानी,
रुक-रुक कर करती है करुण कहानी।

† उमडा दु:ख का ज्वार है,
सारे चित्राकार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार है।

अम्बर से मै गिरी हाय ! अब नही झेलती धरती,
टुकड़े-टुकड़े हृदय हो रहा, रो-रो आहें भरती,
टूटा मन का तार है,
छूटे सब आधार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

लोक-कथन पर कर कलकिता घर से मुझे निकाली,
सीता के जलती है होली, घर-घर आज दिवाली,
नैया यह मझधार है,
नहीं डांड पतवार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

† लय—जिया बेकरार है

भूल रही हूं मैं इसमे, औरों को दोषी ठहराती,
'अत्त कड़े दुक्खे न परकडे' आगम वाणी बतलाती,
सब कर्मो की मार है,
रोष-दोष बेकार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

मान रही हूं अपमानित, इस जीवन से अच्छा मरना,
पर इन उदरस्थों का भी होगा समुचित रक्षण करना,
सबसे बड़ा विचार है,
पूरा मन पर भार है,
पत्थर को पिघलाने वाले सीता के उद्गार हैं।

* जो हुआ सो हुआ तुम जाओ,
दुखिया के पीछे मत दुःख पाओ,
कोई चारा नही,
अन्तिम घड़ियां यही है बितानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

इससे आगे कुछ कहने न पाती,
रोती जाती औरों को रुलाती,
करुणा रस से सना,
वातावरण बना पानी-पानी,
रुक-रुक कर कहती है करुण कहानी।

दोहा

सन्न रहे सुनकर सभी कुछ क्षण तक निस्तब्ध।
बोला महिपति चरण छू, बद्धाञ्जलि मृदु शब्द।

---

* लय—गम दिए मुश्तकिल

* बाईजी ! अपने घर आओ
देकर सेवा का शुभ अवसर,
मेरा मन उपवन सरसाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

आश्चर्य आप जैसी विदुषी
साध्वी पर यह दूषित लांछन,
राघव की निष्ठुरता विलोक
हम सबके काम्प रहे हैं मन,
अनहोनी ऐसी बातें भी
हो जाती जग में कभी-कभी,
इस होनहार के आगे तो
झुकते मानव सुर-असुर सभी।
यह संकट नहीं कसौटी है
धीरज से मन को समझाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

मैं धन्य हुआ इस कानन में
पा महासती के शुभ दर्शन,
इससे बढ़कर क्या हो सकता
मेरे जीवन का उत्कर्षण,
लो चलो, देर मत करो, करो—
उस लघु कुटिया को भी पावन,
वह घर है बहिन ! तुम्हारा ही
मन में न और करना चिन्तन,
भामण्डल तुल्य मुझे समझो
पीहर आते मत सकुचाओ।
बाईजी ! अपने घर आओ।

---

* सहनाणी

चेहरे की चमक बताती है
गलती न तुम्हारी रत्ती भर,
लगता है बड़ा कुचक्र चला
दुष्टों का दाव लगा जी भर,
तुम पूर्णतया निश्चिन्त रहो
ये लोक हसे तो हंसने दो।
हलवा खाते भी दान्त घिसे—
तो बड़ी खुशी से घिसने दो,
भाई की भांप भावनाएं
वात्सल्य सुधा रस बरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

बाई! मैं निश्चित कहता हूं
अब जीजाजी पछताएंगे,
वे उन्मन तुम्हें ढूंढने को
शीघ्रातिशीघ्र ही आएंगे,
पर तुम्हें नही जब पाएंगे,
अकुलाएगे, घबराएंगे,
धीरज देते लक्ष्मण जी आंसू—
पौछ-पौछ थक जाएगे।
सज्जित शिविका तैयार पड़ी
लो बैठो, अधिक न तरसाओ।
बाई जी! अपने घर आओ।

सोरठा

सीता को सानन्द, वज्रजघ लाया स्वगृह।
अति घनिष्ट सम्बन्ध, जुडा एक परिवार-सा।

दोहा

मानो दुख में सुख मिला, तम में नया प्रकाश।
ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय रत, करती धर्माभ्यास।

गीतक छन्द

वहा आवागमन बहिनों का सतत रहने लगा,
स्रोत श्रुत-आराधना का अनवरत बहने लगा।
एक छोटी ज्ञानशाला-सी सहज ही बन गई,
प्रेरणाएं मैथिली देती सदैव नई-नई।

सुगम अक्षर बोध दे, नव तत्त्व भी सिखला रही,
धर्म का व्यवहार में सत्पथ उन्हें दिखला रही।
सुप्त नारी-चेतना को पुनः जागृत कर रही,
सादगी, श्रम, संगठन की भावनाएं भर रही।
कभी भजनों का सरस रस टपकता संगीत में,
विचरती सब कभी सोत्सुक स्वानुभूत अतीत में।
कभी सह स्वाध्याय, तो होती कभी अन्त्याक्षरी,
कभी चलती लघु कथाएं, विविध शिक्षा से भरी।

कभी होता था विवेचन दया-दान विचार का,
कभी विश्लेषण विशद आचार का व्यवहार का।
कभी रहता विषय भाषण में समाज सुधार का,
कभी चिन्तन हुआ करता अणुव्रत परिवार का।

भूलने को दुःख के दिन, यही साधन श्रेष्ठ है,
परोन्नति के साथ मिलती, आत्म-शान्ति यथेष्ट है।
कौन है? कैसे? कहां क्यों? जानता कोई नहीं,
बहिनजी! के नाम से प्रख्यात पुर में हो रही।

सोरठा

प्रतिपल हर्ष विभोर, सुखपूर्वक सीता यहां।
अवधपुरी की ओर, अब थोड़ा-सा झांक ले।

दोहा

भृकुटी चढ़ी अवधेश की जलते ज्यों अगार।
प्राची के रवि सा बना आंखों का आकार।

विविध चिन्तनों मे विकल, है ना कोई पास।
सभी सभासद दूर ही बैठे मौन उदास।

आ कृतान्तमुख ने निकट, विधियुत किया प्रणाम।
'रे सेनानी! आ गया?' पूछ रहे श्रीराम।

'हां आया कर काम सब प्रभु आज्ञा अनुसार।
छोड़ी ले जा जानकी सिहनाद कांतार।'

* वह घोर भयावह जंगल है
जहां छोड़ी मैंने महासती,
यह पराधीनता का फल है।
वह घोर भयावह जंगल है।

उसमें आगे रथ चला नहीं
घोड़ों की टापें रुकी वहीं,
कांटों, उपलों में चल न सके
थे भूखे-प्यासे और थके,
हो गए हाथ लोहू-लुहान
हांके द्रुत मारुत के समान,

---

* सहनाणी

ऊबड़-खाबड़ टेढ़ी धरती
दिन में भी सांय-सांय करती,
झरती निर्झरिणी कल-कल है
वह घोर भयावह जंगल है।

था पथ का कोई पता नही
इति अथ का कोई पता नही,
ज्योंही जा स्यन्दन को रोका
तत्क्षण माताजी ने टोका,
मैने जब सच्ची बात कही
मूर्च्छित हो रथ से गिरी वही,
आकस्मिक मृत मैंने जाना
दुष्कर है वह स्थिति बतलाना,
टूटा सब धीरज का बल है
वह घोर भयावह जंगल है।

तब किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ
सताप गूढ़ से गूढ़ हुआ,
चैतन्य पवन प्रेरित पाया
तो मेरे जी में जी आया,
विह्वल-सी वे विक्षिप्त बनी
आंखों में आ छाई रजनी,
कहना चाहती कह ना पाती
फटती छाती, फिर मूर्च्छाती,
छूटा जीवन का संबल है
वह घोर भयावह जंगल है।

ज्यों-त्यों मन को मजबूत बना
केन्द्रित कर लिया दुःख अपना,

आंखों में रोष लगा बहने
वाणी में जोश लगा बहने,
आत्मा में होश लगा बहने
मन में आक्रोश लगा बहने,
वह नगरी कितनी दूर अरे!
कहां बैठे राघव क्रूर अरे!
मेरे से किया बड़ा छल है
वह घोर भयावह जंगल है।

जाकर उनसे लोहा लूंगी
सब प्रश्नों के उत्तर दूंगी,
पूछूंगी क्यों ऐसे छोड़ा?
क्यों मेरे से नाता तोडा?
वे पुरुष-पात्र कहलाते है
अबला को यों ठुकराते हैं,
क्या पैरों की जूती नारी
जो सहे यातनाएं सारी,
क्या सीता इतनी निर्बल है
वह घोर भयावह जंगल है।

दोहा

मैने धीरज से कहा जाना है निस्सार।
अब इतना ही मानिए राघव से संस्कार।

भैया अच्छी बात है, लेजा यह सन्देश।
मैं चाहे जैसे रहूं, सुखी रहें प्राणेश।

सुनते ही अवधेश का उतर गया आवेश।
आगे उसने क्या कहा? बतला जरा विशेष।

* सीताजी ने कहलाया है,
माताजी ने कहलाया है,
पय-मिश्री का अप्रतिम प्रेम
प्रभुवर ने खूब निभाया है।

सच कहती हूं भ्रात ! तुझे
होता थोड़ा भी ज्ञात मुझे,
यों प्रियतम प्रेम पराङ्मुख है
क्यों लगता यह आघात मुझे,
होती न गर्भ की जो चिन्ता
कर लेती निश्चित आत्मघात,
पाती न बिगड़ने कभी बात
यह नही देखती काल रात।
पर विधि की उलटी माया है
कोई न समझने पाया है।
माताजी ने कहलाया है।

क्यों किया नाथ ! विश्वासघात
जो कहनी कहते स्पष्ट बात,
सीता न कमीनी थी इतनी
क्यों रखा ईश ने पक्षपात,
अब तक जितने भी किये काम
उन सबमे उज्ज्वल हुआ नाम,
जीवन की है पहली घटना
सन्तुलन खो दिया हाय राम !
किसने यह चक्र चलाया है
क्यो ऐसा कदम उठाया है।
माताजी ने कहलाया है।

---

* सहनाणी

कैसे प्रतिकूल प्रवाह बहा
कुछ भी जा सकता नहीं कहा,
नस-नस में उनकी जान रही
अति भावुक-भद्र स्वभाव रहा,
जो हुआ दोष सब मेरा है
निर्दोष निरन्तर रहे राम,
कृत कर्मो का ही कुपरिणाम
जिससे उनकी मति हुई बाम।
झूठा कलंक यह आया है
रवि के रहते तम छाया है।
माताजी ने कहलाया है।

ममता की गांठे शिथिल हुई
भावों को गगरी फूट गई,
निर्यामक का मुह फिरते ही
पतवार हाथ से छूट गई,
सीता की सरिता सूख गई
सपनों की रजनी रूठ गई,
अब क्या जीने में जीना है
जब आकांक्षाएं टूट गई।
सब गतरस किया कराया है
न्यारी काया से छाया है।
माताजी ने कहलाया है।

सोरठा

यों करती अनुताप, तत्क्षण मूर्च्छित हो गई।
संज्ञा पा चुपचाप, आहें भर रोने लगी।
ले प्रभुवर का नाम, उपालम्भ देती रही।
पछ्र रहे श्रीराम. आगे उसने क्या कहा?

* की नभ से ऊंची क्यो ? यदि यों—
रौरव से मुझे गिराना था ,
क्यों वे सुख के दिन दिखलाए—
यदि यह दुर्दिन दिखलाना था ,
हाथो से मार गिराना था
विभुवर विष मुझे पिलाना था ,
लंका में ही मै मर जाती
आ करके नही जिलाना था ।
क्यों गुत्थी को उलझाया है
जीवन को जटिल बनाया है ।
माताजी ने कहलाया है ।

गीतक छन्द

फिर गिरी हो मूर्च्छिता, चैतन्य पा रोने लगी ,
आंसुओं से आर्द्र मानो मेदिनी होने लगी ।
वन्य पशु भी आ गए, अति खिन्न होकर म्लान से ,
सुन रहे बाते सभी अवधेश पूरे ध्यान से ।

† रामजी हो ! रामजी ! श्री रामजी ! जीवन की आब बढ़ाना हो
मेरा अन्तिम नम्र निवेदन इसे भूल मत जाना हो

खैर किया सो किया आपने एक काम मत करना ।
बड़े विषम इस भ्रामक युग में फूक-फूक पग धरना ।

ऐसे मानव जन्म गए जो पर-सुख दुर्बल होते ।
स्वयं डूबते औरों की नैया मझधार डुबाते ।

पल में तुड़वा डाली अपनी अप्रहित जो प्रीति ।
अम्बुज उगा दिया अम्बर में कैसो हाय ! अनीति ।

---

* सहनाणी
† लय—राखना रमकड़ा

सत्य-धर्म को नही छोड़ना सुनकर उनकी बातें।
नास्तिक मिथ्यात्वी-जन पग-पग रहते जाल बिछाते।

सूर्यवंश के सूर्य निभाना अपने कुल की रीति।
चिरंजीव चिरकाल रहो प्रभु, फलो सदा सन्नीति।

दोहा

पूरी भी होने नहीं पाई उसकी बात।
वज्राहतवत् गिर पड़े, मूर्च्छित हो रघुनाथ।

सोरठा

कर शीतल उपचार, किया सजग सबने उन्हें।
उमड़ा दुःख का ज्वार, लम्बी आहें भर रहे।

आंखों में आंसू आते हैं, रह-रह पछताते हैं।
उठ-उठ कर दौड़े जाते हैं, रह-रह पछताते हैं।

सुध-बुध भूले अर्ध अथिल से करते सीता ! सीता !
अरी ! प्रेयसी बिना तुम्हारे मै न रहूगा जीता,
मन ही मन करते बातें हैं।

ध्यान नही लगता था उसका कभी व्यर्थ बातों में,
नही निकम्मी रहती, रखती काम सदा हाथों में,
यों दिल को खोल दिखाते हैं।

आकृति में आकर्षण नव, अमृत वर्षण वाणी में,
कोमलता थी सहज सौम्यता मेरी महारानी में,
कहते-कहते रुक जाते हैं।

नही एक भी अवगुण था जो कवि कहते नारी के,
उसके बिना आज जीवन के रंग राग सब फीके,
किंचित् मन को ना भाते हैं।

† लय—मत बनो शराबी रे

कितनी उसमें वीर वृत्ति थी, कितना सादापन था,
आग्रहहीन, अकृत्रिम, सात्विक क्रान्तिपूर्ण चिन्तन था,
गुण-गौरव गाथा गाते है।

वाक्य 'विवेगे धम्म माहिय' जीवन में उतरा था,
एक शील के बल पर उसका शुभ स्वतत्त्व निखरा था,
अब दृढ़ आस्था बतलाते हैं।

कौन उसे जो कहे कलंकिता, आए मेरे आगे
बक-बक करने वाले सारे अरे ! कहां पर भागे
यों कह तलवार उठाते हैं

हाय ! राम क्यों निकल गया था, राम समूचा तेरा
जड़ जनता की बातो मे आकर डाला अन्धेरा
आकुल-व्याकुल दुःख पाते है

सज्ञा शून्य कभी होते है, कभी पौछते आंखे
तड़प-तड़पता जैसे पंछी, कट जाने पर पांखें
आ सौमित्री समझाते हैं

अब रोने धोने से क्या है ?
कहना न किसी का तब माना,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना।

हमने कितना समझाया था,
हमने कितना सोचाया था,
भावो का रेखाचित्र खींच—
सवितर्क सतर्क बनाया था।

---

* सहनाणी

उस समय दिया कुछ ध्यान नहीं ,
उस समय किया कुछ ज्ञान नही ,
उस समय नही थे आप आप
हो सका अतः अनुमान नही ।

हाथों से काम बिगाड़ा ,
हाथों से धाम उजाडा है ,
सुखकारक सुमधुर फलदायक
हाथों से आम उखाड़ा है ।

कोई न दीखता है उपाय
अच्छा है मन को समझाना ,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना ।

दोहा

जो होना था सो हुआ, भाई ! करो विचार ।
कैसे अपनी भूल का होगा अब प्रतिकार ।

† यह मेरे बस की बात नही ,
यह औरों के भी हाथ नही ,
अब पुनः अयोध्या वे आए
होता ऐसा भी ज्ञात नही ।

यदि चलकर आप स्वयं जाएं ,
सारी स्थिति उनको समझाए ,
तो कुछ सम्भव लगता स्वामिन् !
आने को राजी हो जाए ।

† सहनागी

है अभी सुअवसर जाने का ,
ज्यों-त्यों कर उन्हें मनाने का ,
अपनत्व दिखा, अपनाने का
उजड़ा घर-बार बसाने का ।

अब भी यदि लोगों का भय हो
तो भूल चूक कर मत जाना ,
जब समय हाथ से निकल गया
क्या अर्थ रखेगा पछताना ।

दोहा

'तो क्या मै जाऊ वहां ?' 'हां ! जाओ महाराज !
रूठी रानी को मना लाने मे क्या लाज ?'

गीतक छन्द

बैठ पुष्पक यान में ले चमूपति को साथ में ,
सिहनाद अरण्य पहुचे बात की ही बात में ।
यहां आकर रथ रुका था, यहा मूर्च्छित हो गिरी ,
यहां स्थिरता से कहा सन्देश अपना आखिरी ।

* चरण चिन्ह कुछ दूर चले, पर आगे वे भी मिले नहीं ,
कण्टक-विद्ध अंह्रि शोणित-कण पड़े हुए थे कहो-कहीं ।
बोले राम यहां सीता बैठी हो ऐसा है लगता ,
ज्यों आसार दीखते त्यों-त्यों अधिक विरह जाता जगता ।

झलक रही थी स्पष्ट उदासी कानन के भी आनन में ,
सीता ! सीता ! सीता ! करते राम घूमते वन-वन में ।
जैसा नाम अरे ! वैसा ही तू कृतान्तमुख बना यहां ,
तू ही छोड़ गया था, बतला मेरी सीता गई कहां ?

---

* रामायण

वह बोझा क्यों और चढ़ाते, हाय! राम! मेरे शिर पाप,
छाती पर पत्थर रख मैंने सहा दासता का अभिशाप।
सब कुछ देना देव! न देना पराधीनता जीवन मे,
सीता! सीता! सीता! करते राम घूमते वन-वन में।

† बाढ स्वर रघुवर आवाजे देरहे,
कहां गई रे! कहां गई वह जानकी।

हाय! किया मैंने कैसा अन्याय है
आगे-पीछे कुछ भी सोच सका नही,
अब सारे ही असफल हुए उपाय हैं
नही दीखती निकट-दूर सीता कही,
यों कह रो-रो दीर्घ सिसकियां ले रहे
सजा पा चुका मैं तेरे अपमान की।

शास्त्र,पिटक,श्रुति,स्मृति,साहित्य,पुराण में
प्राय: बतलाई नारी की दीनता,
पुरुष-पात्र कहला कर इस अभियान मे
कैसी यह दिखलाई मैंने हीनता,
यों गड़री प्रवाह में जाते जो बहे
क्या आशा उन पुरुषों से उत्थान की।

* सिंह-निनाद महारण्य का चप्पा-चप्पा छान लिया,
मिली कही भी नही मैथिली तब यह निश्चित मान लिया।
वह अब नहीं विश्व में जीवित श्वापद चाट गया होगा,
निगल गया होगा अजगर या विषधर काट गया होगा।

---

† लय—प्रभुवर आवी वेला क्यांरे आवशे

* रामायण

गीतक छन्द

मुंह अपना सा लिए वे आ गए साकेत में,
हृदय की सब कामनाएं मिल चुकी थी रेत में।
स्वजन-परिजन,बन्धु-बान्धव, दे रहे सब सान्त्वना,
किन्तु रहने लगे राघव सब तरह से उन्मना।

* लगते फीके सरस स्वादु पकवान भी,
कुसुम सुकोमल शय्या तीखे तीर-सी।
नही सुहाते सुखकर मृदु परिधान भी,
मलयानिल भी दु:खद प्रलय समीर-सी।
शासन कार्यो में मन बहलाते रहे,
स्मर विचित्रता विधि के अटल विधान की।

उत्तेजित हो उठते अति उद्वेग में
उन सब लोगों से जाए बदला लिया,
मूर्खो ने आ निष्कारण आवेग में
हा! मेरे ही घर पर यों हमला किया,
स्वयं-स्वयं को फिर यों समझाते रहे
दुहरो भूल न हो घातक सम्मान की।

दोहा

आना जाना भी रुका अन्त:पुर की ओर।
सीता विरहाघात ने दिया हृदय झकझोर।

गीतक छन्द

अब सभी वे रानियां कर रही पश्चाताप हैं,
आज रह-रह खा रहा उनको उन्हीं का पाप है।

* लय—प्रभुवर आवी वेला क्यां रे आवशे

किया जो हित के लिए उलटा अहितकारी बना,
शास्त्र अपना हाय! अपने लिए संहारी बना।

जब यहां थी मैथिली तो राम भी आते रहे,
हमें दर्शन दे सरस वचनाम्बु बरसाते रहे।
आज उसके बिना प्रभु का आगमन भी बन्ध है,
देख भी हम नही पाती आर्य-मुख-अरविन्द है।

जो औरों को दु:ख पहुंचाते, सुख से न उन्हे बसते देखा।
जो औरों का जी तड़फाते, उनको न कभी हसते देखा।

अपने गुण से पूजा पाते,
अपने श्रम से बढ़ते जाते,
पर उन्हें गिराना जो चाहते, उनको खुद ही फसते देखा।

मक्खी की तरह स्वयं मर कर,
पर-स्वत्व मिटाने में तत्पर,
रहते जो जनता को उन पर तीखे ताने कसते देखा।

पर-विभुता से दुर्बल होते,
वे अपने गौरव को खोते,
उस राजपुरोहित ज्यों रोते, खिचते ही संकट की रेखा।

रखने अपना ऐश्वर्य अचल,
छल से देते पर-सौख्य कुचल,
मन में जल-जल उनको प्रतिपल, दु:ख दल-दल मै फंसते देखा।

स्वार्थों में भूल उचित पथ को,
करते क्षत पर जीवन रथ को,
उनके साथी नृप-मणिरथ को सित पन्नग से डसते देखा।

लय—नरदेही व्यर्थ गमाई नां

: ५ :

प्रतिशोध

गीतक छन्द

शरद ऋतु की सुखद शीतल पवन लहरी चल रही ,
विगत घन, अति शुभ्र अम्बर पंक विरहित थी मही ।
आ रहा विस्तार वर्षा का सहज संक्षेप में ,
ज्यों समाहित तत्त्व सारे चतुर्विध निक्षेप में ।

नाति शीत, न चाति ऊष्मा, सम अवस्थित भाव में ,
सर्वदा ज्यों लीन रहते सन्त सहज स्वभाव में ।
निशा-वासर है बराबर तुल्यता कफ-बात में ,
वेदनी आयुर्यथा सम समुद्घात-विघात में ।

पूर्णतः अनुकूल ऋतु यह स्वास्थ्य-शोधन के लिए ,
ज्यों अणुव्रत आज जन-मानस-प्रबोधन के लिए ।
स्वच्छ सलिल सरोवरों का मुकुर सदृश सुहावना ,
धर्म-शुक्ल-ध्यान में जैसे समुज्ज्वल भावना ।

जैन-मुनि भी कर रहे अब प्रतीक्षा प्रस्थान की ,
योग-रोधक प्राप्त-शैलेशी यथा निर्वाण की ।
स्वल्प-सी भी वृष्टि होती, सिद्ध अत्युपयोगिनी ,
सजग मुनि की क्रिया, संवर-निर्जरा संयोगिनी ।

हो रही कृशकाय नदियां, क्षीण निर्झर पीनता ,
क्षपक श्रेण्यारूढ़ मुनि की ज्यों कषाय-प्रहीणता ।
वर्ष भर का कृषिक-श्रम अब हो रहा साकार है ,
खींचता तन-सार अनशन में यथा अनगार है ।

दोहा

शारद शशधर तुल्य अब खिली सती की क्रान्ति ।
आज मिल रही क्रान्ति में परम हृदय को शान्ति ।

गीतक छन्द

युगल पुत्रों के प्रसव से प्रमुदिता सीता सती ,
पुण्डरीक-पुरी बनी ज्यों अवनि की अमरावती ।
शक्ति से भी अधिक नृप ने समुद जन्मोत्सव किए ,
उल्लसित वातावरण में नाम लवणांकुश दिए ।

दोहा

ज्यों हिम ऋतु की यामिनी बढ़ते दोनों भ्रात ।
लगते लोचन युगल से माता को साक्षात ।

शोभित मां की गोद में दोनों पुण्य निधान ।
होते ज्यों चारित्र में सम्यग् दर्शन-ज्ञान ।

शोभित मां की गोद में दोनों पुण्य-निधान ।
ज्यों नभ में रवि-चन्द्रमा देते प्रभा महान ।

शोभित मां की गोद में दोनों पुण्य-निधान ।
ऊर्ध्व लोक में ज्योति-मय ज्यों सुधर्म-ईशान ।

तुतली बोली, स्खलित गति देती परमानन्द ।
निज गुण आत्मा में यथा फलते अप्रतिबन्ध ।

माता जागृत कर रही नैसर्गिक संस्कार ।
नव दीक्षित को ज्यों सुगुरु सिखलाते आचार ।

* माता संस्कार जगाती है,
जननी संस्कार जगाती हैं,
बन सहज शिक्षिका जीवन की
अपना कर्तव्य निभाती है,
जननी संस्कार जगाती है।

जो स्वयं सुसंस्कृत होती है,
जो परम परिष्कृत होती है,
अज्ञान पटल के अंचल से
जो पूर्ण अनावृत होती है।
क्षोणी-सी जिसमें है क्षमता,
सागर-सो जिसमें है समता,
नवनीत तुल्य अन्तर कोमल
माता-सी जिसमें है ममता।
आत्मीय अलौकिक प्रतिभा से
इंगित पर सब समझाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

बच्चे का कैसे पालन हो,
कैसे जीवन संचालन हो,
हो खाद्य-पेय कैसे नियमित,
कैसे अन्तर प्रक्षालन हो,
क्यों कम बेसी हंसता-रोता,
क्यों कम बेसी जगता-सोता,
उसको गतिविधियों का पूरा
अनुमान उसी को है होता।
वह सरल मनोवैज्ञानिक बन
सारी उलझन सुलझाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

---

* सहनाणी

होता है बालक सरल हृदय
करता जाता अभिनव अभिनय,
निर्भय हो मां के आगे ही
रखता रहता मन के सशय,
गृह-कार्य निरत सुन लेती है
धीरज से उत्तर देती है,
मन रोष न करती सोच समझ—
यह पकने वाली खेती है।
एकेक बात को सौ-सौ बार
बतलाती नहीं अघाती है।
जननी संस्कार जगाती है।

रखती अनुशासन से शासित,
स्खलना पर करती है त्रासित,
वात्सल्य दिखाती बार-बार
सद्गुण सौरभ से कर वासित,
नैतिक, आध्यात्मिक शिक्षाएं
देती कर विविध समीक्षाएं,
लेती रहती है समय-समय
कण्ठस्थित तत्त्व परीक्षाएं।
नय, विनय, विवेक, सत्य-मित भाषण
शिष्टाचार सिखाती है।
जननो संस्कार जगाती है।

* संस्कारी माता-पितु के नन्दन भी होते संस्कारी,
सद् आचारी माता-पितु के नन्दन सदा सदाचारी।
मिट्टी जैसा घड़ा पुत्र भी प्राय: मातृ-पितु अनुरूप,
राम और सीता के पुत्र युगल लवणांकुश हैं तद्रूप।

* रामायण

प्रातः उठते ही करते हैं महामन्त्र का स्मरण सदा,
नित्य नियम कर दोनों छूते पूज्य जनों के चरण सदा।
नियत समय पर खेलकूद है, नियत समय पर विद्याभ्यास,
नियत समय पर खाना-सोना, करते सर्वांगीण विकास।

सोरठा

सिद्धपुरुष सिद्धार्थ, गुणी विशिष्ट अणुव्रती।
गुण अनुरूप यथार्थ, नामकरण निर्मल चरण।

वर निमित्त अष्टांग, शास्त्र-शस्त्र-विद्या-निपुण।
मज्जन सांगोपांग, आगम-अम्बुधि में किया।

देव-सुगुरु-सद्धर्म, सुधामयी रत्नत्रयी।
सुविहित अन्तर मर्म, मान रहा जीवन जड़ी।

गीतक छन्द

अनासक्त, विरक्त जीवन, बना वानप्रस्थ-सा,
साधना में रत निरन्तर, हो रहा आत्मस्थ-सा।
तपस्वी, भिक्षोपजीवी, अकिंचन, अपरिग्रही,
सदन आया, सती सादर असन उसको दे रही।

बाई तू है कौन ? विरहिणी सी क्यों ऐसे रहती है ?
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीड़ा सहती है।
लगता ऐसा तू है पुत्री ! रानी बड़े घराने की,
सार्धमिक भाई से बाई ! क्या है बात छिपाने की,
क्यों अविरल आंखों से यों, आंसू की धारा बहती है।
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीड़ा सहती है।

सारी स्मृतियां जाग उठी, कोशला सामने दीख पड़ी,
महा भयावह सिंहनाद के स्मरण मात्र से चीख पड़ी,

* लय—बाजरै री रोटी पोई

जान पूर्ण विश्वासी अपनी करुण कहानी कहती है।
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीड़ा सहती है।

सगी बहिन से बढ़कर रखता, व्रजजंघ नृप मुझे यहां,
सब कुछ है तो भी पर-घर है, कहो चित्त में चैन कहां?
क्या बतलाऊं यह चिन्ता, बन चिता निरन्तर दहती है।
आकृति तेरी बतलाती, तू अन्तर पीड़ा सहती है।

* इतने में नन्दन आते।

आते ही सादर सिद्ध-पुरुष को, सविनय शीश झुकाते।

खिला चान्द सा मोहक मुखड़ा, मधुर-मधुर मुस्काते।
अद्भुत प्रभा विशाल भाल पर, लोचन हृदय लुभाते।

अनुपम आकर्षण आकृति का, स्तब्ध सिद्ध रह जाते।
ऐसे पुत्र रत्न पा, मां क्यों ? काटे दुःख की रातें।

राम और लक्ष्मण को भी ये भ्राता युगल भुलाते।
क्या उज्ज्वल भविष्य है इनके चेहरे ही बतलाते।

सुन-सुन मैं तो मुग्ध हो गया इनकी मार्मिक बातें।
सहज चपलता में ही कितने छुपे रहस्य दिखलाते ?

दोहा

सीता तू सौभागिनी ऐसे पुत्र समर्थ।
क्यों करती भोली अरे ! इतनी चिन्ता व्यर्थ।

† भाई ! सब कुछ ठीक, किन्तु कोई न पढाने वाला है,
जीवन के उन्नति पथ पर, कोई न बढाने वाला है।
लेता हूं दायित्व स्वयं मैं, कर मत इनका तनिक विचार,
मेरी विद्याओं के सच्चे, पात्र मिले मन के अनुसार।

---

* लय—हम वह आदर्श दिखाएं

† रामायण

दोहा

सुन प्रमुदित सीता हुई, सौंप दिए सौल्लास।
सिद्धपुरुष करवा रहा सत्वर विद्याभ्यास।

* शिक्षक सिद्धार्थ पढाता है,
अध्यापक स्वय पढ़ाता है,
सन्तोषी, सभ्य, मदाचारी
सारे शास्त्रों का ज्ञाता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

वाणी के पहले ही जिसका
व्यवहार स्वयं जो बोल उठे,
पुस्तक के पहले ही जिसका
आचार स्वयं जो बोल उठे,
कार्यों के पहले ही जिसके
संस्कार स्वयं जो बोल उठे,
जिसके संक्षेपी शब्दों में
विस्तार स्वयं जो बोल उठे;
उससे बढ़कर फिर कौन कहो!
बच्चों का भाग्य विधाता है।
अध्यापक स्वयं पढ़ाता है।

जिसने अनुशासन में रहकर
अनुशासन करना सीखा है,
जिसने मित भाषण में रहकर
मित भाषण करना सीखा है,
जिसने पथ-दर्शन में रहकर
पथ-दर्शन करना सीखा है,

* सहनाणी

जिसने सु-विमर्षण में रहकर
सु-विमर्षण करना सीखा है,
जीवन-नैया का निर्यामक
सुन्दर भविष्य सधाता है।
अध्यापक स्वय पढ़ाता है।

विद्या क्रय-विक्रय का साधन
जो कभी न माना करता है
शिक्षण में भी विद्यार्थी की
अभिरुचि को जाना करता है
निष्पक्ष दक्षता से कर्तव्य-
सदा पहचाना करता है,
प्रामाणिकता नियमितता से
सज्ज्ञान खजाना भरता है।
भर बूंद-बूंद से घड़ा, बड़ा—
वह देश-राष्ट्र निर्माता है।
अध्यापक स्वय पढ़ाता है।

विद्यार्थी पढ़ते जाते है,
लवणांकुश पढ़ते जाते है,
अपने इन सहज गुणो से ही
वे आगे बढ़ते जाते है।
विद्यार्थी पढ़ते जाते है।

जो विनयी विज्ञ विचक्षण है
नैसर्गिक प्रभा विलक्षण है,
कण-कण में जिनके जिज्ञासा
जीवन सर्वांग सुलक्षण है,
गुरु इंगित पर जो चलते हैं,
गुरु इंगित पर जो पलते हैं,

अपना औचित्य निभाने में भी
कभी नहीं जो टलते है।
पल-पल को सफल बनाकर प्रगति
शिखर पर चढ़ते जाते हैं।
विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं।

सोत्सुक गुरुकुल में रहते हैं,
तप, योग यथाविधि सहते है,
सहते अनुशासन मृदु-कठोर
प्रिय करते हैं, प्रिय कहते है,
सात्विक, तात्त्विक, स्वल्पाहारी,
अकुतोभय, अटल ब्रह्मचारी,
श्रम-निष्ठ, शिष्ट गुण में विशिष्ट
व्यवहार कुशल आज्ञाकारी,
जीवन कांचन में सद्विद्या
मुक्ता-मणि मढ़ते जाते हैं।
विद्यार्थी पढ़ते जाते हैं।

दोहा

स्व-क्षयोपशम था प्रबल, सिद्धपुरुष सयोग।
सत्वर विद्याभ्यास का सफल हुआ उद्योग।

विद्यादान-प्रदान से उभय पक्ष कृतकृत्य।
मातृ-चरण में आ गिरे, सिद्ध चरण आदृत्य।

* नैतिक, सामाजिक, अर्थ-शास्त्र,
शासन-विधि का अध्ययन किया,
हो कूट-नीति के विशेषज्ञ
आध्यात्मिक शिक्षण-चयन किया,

---

* सहनाणी

सीखी वर धनुर्वाण-विद्या
अस्त्रों की अनुसन्धान कला,
कविता-संगीत-चित्र-दर्शन
साहित्य-मनोविज्ञान-कला।

सब विद्याओं में पारंगत
मातुल के सम्मुख आते हैं,
लावण्य वदन पर निखर रहा
अपना कौशल दिखलाते हैं,
यों देख शौर्य, गांभीर्य, धैर्य नृप—
का मन हर्ष विभोर हुआ,
अरुणाई तरुणाई विलोक—
अन्तर चिन्तन कुछ और हुआ।

दोहा

अब वृद्धा के घर नही अधिक टिकेंगे शेर।
दोनों के उद्वाह में उचित नहीं है देर।

यों विचार अपनी सुता रूपकला सम्पन्न।
सोत्सव लवणकुमार को ब्याही परम प्रसन्न।

किया सुदृढ पारस्परिक अविच्छिन्न सम्बन्ध।
सीता को भी पा स्नुषा, मिला परम आनन्द।

* अंकुश का परिणय तय करने पृथ्वीपुर भेजा संवाद,
पृथुनृप से कहलाया, कंचनमाला पुत्री दो साल्हाद।
बोला पृथु उस भागिनेय के कुल की बिना जान-पहचान,
बतलाओ! मैं ऐसे कैसे कर सकता हूं कन्या-दान।

---

* रामायण

मैंने जब अपनी कन्या दी तो क्यों करते आप विचार,
पड़ी म्यान को रहने दो यदि आंक सको आंको तलवार।
तुम जिससे चाहो अपनी पुत्री का कर सकते सम्बन्ध,
किन्तु सुता को मैं न कूप में डालूंगा कर आंखें बन्ध।

तुम क्या दोगे नहीं ? तुम्हारी छाया को देना होगा,
अगर नहीं दोगे तो काया-माया को देना होगा।
अभी स्नेह से समझाते हैं, वरना चढ़कर आएंगे,
माथे पर रख पांव तुम्हारी कन्या को ले जाएंगे।

दोहा

बातों-बातों में छिड़ा सहज सहेतुक युद्ध।
उभय पक्ष के भट भिड़े रण-रेखा पर क्रुद्ध।

गीतक छन्द

पृथु-प्रबल-बल सामने दल वज्र का हटने लगा,
उदय से ज्यों मोह के चारित्र-बल घटने लगा।
पुनः दोनों ओर से होने लगी तैयारियां,
सन्नद्ध योद्धा बढ़ रहे करते हुए किलकारियां।

† पूछते लवणांकुश भाई,
मामाजी ! यह आज बज रही क्यों सहनाई।

तप्त हेम से आप सभी के वदन हो रहे लाल,
भृकुटी-भंग से लगता मानों कुपित हुआ है काल,
अजब आखों में अरुणाई।

कमर कसी तलवार हाथ में भाला, बरछी तीर,
पहने कवच, तान सीने को चलते बांके-वीर,
देखते अपनी परछाई।

† लय—तावड़ा धीमो पड़ज्या रे

आज जा रहे पुत्रों ! पृथ्वीपुर करने संग्राम,
आए दिन लड़ते रहना हम राजाओं का काम,
वीरता आकृति में छाई।
आज सुपुत्रों ! बजती है यह रण की सहनाई
चढ़ाई करते हैं भाई !
चढ़ाई करते हैं भाई !

क्या कारण आकस्मिक रण का, क्या है विषम विवाद ?
क्या कोई सीमा का विग्रह जो करते प्रतिवाद,
ध्यान में बात न कुछ आई।

मांगी कंचनबाला करने अंकुश का उद्वाह,
पर उस अभिमानी ने मेरी की न जरा परवाह,
राह आहव की अपनाई।

तब तो मामाजी ! जाएंगे हम अवश्य ही साथ,
वंश पूछने वालों को दिखलाएंगे दो हाथ.
मिटा देंगे सब अकड़ाई।
समझ गए यों आज बजी है रण की सहनाई,
कह रहे लवणांकुश भाई।

* कब पीछे रहने वाले थे,
वे कब यों सहने वाले थे,
चल पड़े सज्ज शस्त्रास्त्रों से
वे निर्भय बहने वाले थे
जाते ही दोनों पक्षों में
जब प्रथम-प्रथम सम्मिलन हुआ
ये कौन-कौन यों बातों ही—
बातों में भावाकलन हुआ।

---

* सहनाणी

म्यानों से निकली तलवारें
खरतर बाणों की बौछारें,
पवि नृप के सुभट न ठहर सके
लगता अब हारे, अब हारे,
यों देख स्वपक्ष पराजय वे—
भट उभय वीर ललकार उठे,
मानों सुषुप्त मृगपति जागे,
काले फणधर फुफकार उठे।

सुनकर टंकारें चापों की
टिक सके विपक्षी वीर नही,
कैवल्य युगल के आगे क्या?
रह सकते घातिक कर्म कही?
अवलोक पलायन सेना का
पृथु प्राण बचाने को भागे,
कोसों तक दूर खदेड़ दिया
वे थे पीछे, वे थे आगे।

दोहा

ऐसे कैसे भग रहे ओ क्षत्रिय अवतंश।
ठहरो अब बतला रहे तुम्हें हमारा वश।

* जान लिया जी! जान लिया,
वंश आपका जान लिया।
पहचान लिया पहचान लिया
वंश-अंश पहचान लिया।

देख लिया पौरुष प्रत्यक्ष,
टिक पाऊंगा मैं न समक्ष,

* लय—जावण द्यो रे भाई! जावण द्यो

कन्या देना मान लिया।
जान लिया जी! जान लिया।

कन्या बिना जान-पहचान,
किसे दे रहे हो श्रीमान्?
किस बल पर अभिमान किया।
ऐसे कैसे जान लिया?

जो होता पहिले ही ज्ञात,
कभी नही बढ़ती यह बात,
नहीं सही अनुमान किया।
जान लिया जी! जान लिया।

ऐसा करने से प्रस्थान,
बचा नहीं पाओगे शान,
क्यों पहिले अपमान किया?
ऐसे कैसे जान लिया?

दोहा

यों कहकर कोदण्ड पर ज्योंही साधा बाण।
थर-थर-थर-थर कांपने लगे भूप के प्राण।

* ओ! वज्रजंघजी! आकर इन वीरों को समझाइए।
ओ! वज्रजंघजी! सादर सोत्सव कन्या को ले जाइए।

मैं हारा, तुम जीते बाबा! अब तो इन्हें मनाओ।
मेरी भूलें भूल, कृपा कर अपना मुझे बनाओ।

मैंने तो इनको समझा था, वपु-बल-वय के कच्चे।
पर गुदड़ी में गोरख निकले, शेर बबर्ची सच्चे।

* लय—म्हांरी रस सेलड़ियां

मामाजी यों भानेजों को धीरज से समझाते।
नहीं क्षमाप्रार्थी पर वीरों ! क्षत्रिय बाण चलाते।
ए वीर कुमारों ! अब इस रण से उपरत हो जाइए।
रणधीर कुमारों ! शरणागत की अब शान बचाइए।

ये अपने घनिष्ट सम्बन्धी श्वसुर बने अवरज के।
मिलो-जुलो, सस्नेह ले चलो, अब बरात सजधज के।

* पल भर में ही वीर-रौद्र रस बदल गया हर्षोत्सव में,
शीघ्र उग्र प्रतिशोध-भावना परिवर्तित प्रेमोद्भव में।
क्षण भर पहले जो लड़ते थे वे आपस में गले मिले,
पलट गया पासा ही सारा फूल और के और खिले।

† अचानक रंग नया लाए,
बड़ा रहस्योद्घाटन करने नारदजी आए।

मची एक अभिनव हलचल-सी विस्मित-से सारे,
झुके सहज ऋषिवर चरणों में सब डर के मारे,
उच्च आसन पर सरसाए।

जगल मे मंगल यह कैसा ? कैसी तैयारी ?
भाव-विभोर हो रहे भूले सुध-बुध-सी सारी,
हर्ष-घन उमड़-घुमड़ छाए।

बोला पृथु कंचनमाला है सुकुमाला बाला,
देवर्षे ! अंकुश को पहनाएगी वरमाला,
अतः मंगल जाते गाए।

* रामायण
† लय—तावडा धीमो पडज्या रे

'दाई' आगे पेट छुपाना अरे ! कहां सीखे ?
दिखा रहे आनन्द तुम्हारे ये चेहरे फीके,
हृदय घबराए-घबराए।

अरे ! वंश क्या है अंकुश का यह तो बतलाओ ?
किसे दे रहे कन्या-धन्या यह तो समझाओ ?
ध्यान में मेरे आ जाए।

सविनय पृथु ने कहा ऋषीश्वर ! मैं इनसे हारा,
अतः बाध्य हो देता पुत्री नही और चारा,
आप ही कृपया बतलाएं।

दोहा

लवणांकुश भी हो रहे सुनने को सोत्कण्ठ।
आकर वे बैठे उभय चुपके ऋषि उत्कण्ठ।

* बताऊं मैं क्या इनका वंश,
क्या अब तक पहचान न पाए सूर्य-वंश अवतंश।
बताऊं मैं क्या इनका वंश।

युग निर्माता प्रभु आदीश्वर,
प्रथम चक्रवर्ती भरतेश्वर,
इस कुल के नभ-हंस।
बताऊं मैं क्या इनका वंश।

कितने इसमें वीर हुए हैं,
विज्ञ विवेकी धीर हुए हैं,
त्यागी विगताशस।
बताऊं मैं क्या इनका वंश।

---

* हमारा प्यारा राजस्थान

रघु-दिलीप-अज से उन्नायक ,
नृप दशरथ से भाग्य-विधायक ,
योद्धा-प्राप्त प्रशंस ।
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

प्रबल प्रतापी राघव-लक्ष्मण ,
जान रहा जगती का कण-कण ,
(किया) दशकंधर का ध्वंश
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

राम और सीता के नन्दन ,
ये दोनों रघुकुल के चन्दन ,
हैं असली के अंश ।
बताऊं मैं क्या इनका वंश ।

दोहा

हो सस्मित विस्मित पृथु पूछ रहा साश्चर्य !
ये कैसे आए यहां ? बतलाए तात्पर्य ?

* सीता को छोड़ दिया वन में ,
सीता को छोड़ दिया वन में ।
यह राम-राज्य की अजब नीति ,
श्री लक्ष्मण के अनुशासन में ।

जब गर्भवती थी महासती
शर पर अभियोग बड़ा आया ,
लंका-प्रवास का ले निमित्त
अबला को दोषी ठहराया ,

---

* सहनाणी

भारी जनमत का जोर चला
मानो सिहासन डोल गया,
अपयश से डरकर रघुवर ने
अपनाया ऐसा पंथ नया।
पहिली घटना यह निन्दास्पद,
हा! घटी राम के जीवन में।
सीता को छोड़ दिया वन में।

राघव ने तो पाटी-पोती
कुछ करने में रक्खी न कमी,
पर था सतीत्व का बल अटूट
उदरस्थ पुत्र ये पराक्रमी,
नृप वज्रजंघ का योग मिला
संकट में शुभ सहयोग मिला,
भावी का चक्र चला ऐसा
यह अनहोना संयोग मिला।
तेरी पुत्री सौभाग्यवती,
तू सोच न कर किंचित मन में।
सीता को छोड़ दिया वन में।

सुन तमक उठे हैं लवणांकुश
अंकुश यह अंकुश सह न सका,
इस हृदय द्रावक घटना के
आगे वह मौनी रह न सका,
माता को ऐसा कष्ट दिया
क्या काम राम ने हाय! किया,
अन्याय किया, अन्याय किया,
यह महाघोर अन्याय किया।

है कहां अयोध्या ? कहां राम ?
लग गई आग सारे तन में।
माता को छोड़ दिया वन में।

जिस मां का हमने दूध पिया।
उसका अपमान न देखेंगे,
चम-चमती इन तलवारों से
हम जा करके बदला लेंगे,
रे ! दूर कौनसा कौशल है
वीरत्व स्वयं का तुम तोलो,
यदि थोड़ी सी भी क्षमता है
करके दिखलाओ कम बोलो।
'कलिकारक' सुलगा चिनगारी
हो गए लीन नभ प्रांगण में।
सीता को छोड़ दिया वन में।

दोहा

आतुरता उद्विग्नता बढी उभय के अंग।
शीघ्र अयोध्या-गमन का छेड़ा गया प्रसग।

वज्रजघ दे सान्त्वना करते है आश्वस्त।
तत्क्षण वैवाहिक विधि की सम्पन्न समस्त।

गीतक छन्द

चले अब दिग्-विजय करने वज्र-पृथु नृप साथ में,
मार्गवर्ती देश जीते बात की ही बात में।
सुर-तटी-तट जीतकर आगे चले कैलाश से,
उत्तरी दल जीतते बढ़ते रहे उल्लास से।

सिन्धु-तट के निकट साधे प्रान्त सब आराम से,
युद्ध अब लगने लगे है उन्हे भुज-व्यायाम से।
कर सफल दिग्-विजय-यात्रा सबल दल-बल ठाठ से,
आ गिरे मां के चरण में युगल नव सम्राट से।

देख पुत्रों की सुशोभा अति प्रफुल्लित जानकी,
हो रही साकार स्मृति अपराजिता वरदान की।
मैं सुपुण्या हूं, अनन्या खिला भाल विशाल है,
सास के तो एक, मेरे युगल विजयी लाल हैं।

चतुष्पदी

चरण-प्रणत पुत्रों को माता,
कहती जुग जीओ युग त्राता।
सिद्ध कामनाए हों सारी,
जोड़ी अक्षय रहो तुम्हारी।

फूल रही गौरव से छाती,
सजल लोचनो से नहलाती।
देती बार-बार आशीषे,
भूल रही अन्तर मन-टीसे।

वज्रजघ ने किया इशारा,
हो अब शीघ्र प्रयाण हमारा।
यह अवसर कौशल जाने का,
प्रबल पराक्रम दिखलाने का।

सहज जुड़ी है सेना भारी,
फिर करनी होगी तैयारी।
तत्क्षण गूजी रण-सहनाई,
चलने उद्यत दोनों भाई।

दोहा

घर आए चिरकाल से करके विजय महान् ।
आते ही करने लगे, अरे ! किधर प्रस्थान ।

* अयोध्या हम जाएंगे
मातुश्री का यह अपमान न सह पाएगे ।

इतने दिन कुछ भेद न पाया ,
नारद मुनि ने हमें जगाया ,
पूज्य पिताजी को अब पौरुष दिखलाएंगे

† यों सुन सीता सती हुई दिलगीर ,
लोचन धारा बहने लगी ।
हो मेरे लाल !
उनकी बाते गई कलेजा चीर ,
गद्गद् स्वर से कहने लगी ।
हो मेरे लाल !

रे ! रे ! पुत्रों ! यह क्या करते काम
क्या उन्हे नही पहचानते ?
मेरी आशा के तुम ही विश्राम ,
क्यों यह झूठा हठ ठानते ।

* हमने उनको जान लिया है ,
सही रूप पहचान लिया है ,
क्या हम कम है मां ! जो उनसे घबराएंगे ।

बने वे क्रूर भाव न मोड़ा ,
हाय ! तुम्हे वन में जा छोड़ा ,
क्या हम आंखे मूद, देखते रह जाएगे ?

---

* लय—राग री रेस पिछाणो
† लय—बधज्यो रे ! चेजारा थारी बेल

* जो कुछ किया उन्होंने उसको भूल
समझो ! अपने कर्तव्य को।
उनके पीछे तुम न बनो प्रतिकूल
जाओ अपने गन्तव्य को।

नही बड़ों से अड़ना अपना धर्म
मेरा यह मनन यथेष्ठ है।
छोड़ो तुम यह आहव का उपकर्म,
मिलना ही सर्व श्रेष्ठ है।

† कटुता का प्रतिफल है कटुता,
राजनीति की है यह पटुता,
उलझे बालों को कैंची से सुलझाएंगे।
जाते हम कर्तव्य निभाने,
जैसे को तैसा समझाने,
यही सही मन्तव्य इसी को अपनाएंगे।

* नये खून का नया अभी तक जोश,
कुछ होश सम्भालो स्थैर्य से।
देखा नही राम-लक्ष्मण का रोष,
खामोश काम लो धैर्य से।

† धीरज की भी हद होती है,
अति धीरज स्वतत्त्व खोती है,
पतिता कलंकिता के पुत्र न कहलाएंगे
नहीं रुकेंगे, नहीं रुकेंगे,
तलवारों के साथ झुकेंगे,
माता का सम्मान बढ़ाकर ही आएंगे।
अयोध्या हम जाएंगे।

---

* लय—बढ़ज्यो रे ! चेजारा थारी बेल
† लय—राग री रेंस पिछाणो

: ६ :

मिलन

* रणभेरी गूंजी अम्बर में,
आकस्मिक आहव की चर्चा
साकेत नगर के घर-घर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

सेना का स्कन्धावार जमा
है रचे रचाये विविध व्यूह,
शस्त्रास्त्रों से सब सज्ज-सज्ज
है अडे खड़े सैनिक समूह,
भू काप रही पाद-ध्वनि से
नभ बधिर हो रहा नारों से,
फुकारों से हुंकारों से
ललकारों से टकारों से,
आंखे अंगारे बरसाती
है आग धधकती अन्तर मे।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

मूछो पर ताव चढाते है
आपस मे जोश जगाते है,
जय तूर वजा, नक्कारों पर
डके की चोट लगाते है,
रे ! अवध नरेश्वर कानों मे
क्या तैल डाल कर सोए है,

* सहनाणी

क्या नगरी के आरक्षक-गण—
भी किसी नशे में खोए है,
या डर के मारे कहीं छुपे
करते संवाद परस्पर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

सनसनी भयकर जनता में
मच रही कही पर भगदड़-सी,
आयात-यात सब ठप्प हुआ
हो रही व्यवस्था गड़बड-सी,
जन-जीवन अस्त-व्यस्त बना
आतक अतर्कित छाया है,
श्री राघव-लक्ष्मण के होते
यह कैसी, किस की माया है,
ये कौन ? कहां से आए हैं ?
सब पूछ रहे एक स्वर में।
रणभेरी गूंजी अम्बर में।

आरक्षक-नायक ने देखा
जन-मानस संकट ग्रस्त हुआ,
दल-बादल ज्यों बाहिर सेना
तो उसका अन्तर त्रस्त हुआ,
आ राज्य सभा में बद्धाञ्जलि
बोला जन-नायक ! क्या जाने ?
किसने हम पर आक्रमण किया
उसको परमेश्वर पहिचाने,
हलचल-सी खलबल-सी भारी
है उथल-पुथल सी पुर भर में।
रणभेरी गजी अम्बर में।

यह कैसे है डरपोक लोग
कुछ नही समझ में आता है,
थोड़ी-सी खड़बड़ सुनते ही
इनका मन घबरा जाता है,
आक्रमण अयोध्या पर कर दे
क्या कोई खेल तमाशा है,
यह कठिन कल्पना भी करना
थोथी-सी स्वप्निल आशा है।
आया है पथ-भूला कोई
यों कहा राम ने उत्तर में।
रणभेरी गूजी अम्बर में।

उलटा उसका उपहास हुआ
मन में न जरा विश्वास हुआ,
पर उपर्युपरि युद्धोत्तेजक
ध्वनि से रण का आभास हुआ,
जाओ सेनानी ! तुम जाओ
सीधे समझे तो समझाओ,
ज्यादा चींचप्पड़ करते हों—
डंडो से मार भगा आओ
सत्वर सेना को साथ लिए
हो सज्ज आ गया संगर में।
रणभेरी गूजी अम्बर में।

ज्यों ही कौशल की वरूथिनी रण-रेखा पर हुई खड़ी,
त्यों ही प्रतिपक्षी सेना, भूखे बाघों ज्यों टूट पड़ी।
एक-एक भट लगा भागने, कोई भी टिक सका नही,
यथाख्यातचारित्र सामने क्या ठहरेगा मोह कही ?

* रामायण

सेना है, या लाए हो भाड़े के पकड़-पकड़ रगरूट,
केवल भगना ही सीखे, ये मानो रेगिस्तानी ऊंट।
कौन तुम्हारा है अधिनायक, उसको आगे आने दो,
प्राण बचाकर जो बेचारे, जाएं उनको जाने दो।

दोहा

देख विपक्षी बल प्रबल चिन्तित सेनाध्यक्ष।
लड़ने में असमर्थ हैं हम इनके समकक्ष।

अहो! अकल्पित कल्पना होती है साकार।
सूर्य-चन्द्र रहते हुए, तमसावृत ससार।

पहुचाया अवधेश के निकट गुप्त संवाद।
'इज्जत का यह प्रश्न है', तुरत उठे सविषाद।

युग पलटा, उलटी धरा, या टूटा आकाश।
कौन कर रहा है अरे! यह असफल आयास।

विविध विकल्पों में विकल चले अयोध्यानाथ।
नानायुध गज, रथ, तुरग, सारी सेना साथ।

* उन अज्ञात युगल वीरों से करने को सग्राम।
रोषारुण हो समराङ्गण में आए लक्ष्मण-राम।

अरुण नैत्र निष्करुण हृदय, त्यों निष्प्रकम्प निस्नेह,
थर-थर अधर दशन से डसते, शस्त्र-सुसज्जित देह,
सोच रहे जन अरे! हो गया है किसका विधु बाम।

भृकुटी चढ़ी है, बड़ी व्यग्रता, फड़क रहे भुज-दण्ड,
कड़क रहे बिजली ज्यों रिपु को कर देगे शत-खण्ड,
है प्रचण्ड कोदण्ड हाथ में मूर्त रूप ज्यों स्याम।

---

* लय—मंगल आज मनाएं गाएं

नल, सुग्रीव, विभीषण, अंगद आंजनेय से वीर,
अहंप्रथमिका वाले योद्धा एक-एक से धीर,
सबको साथ लिए सत्वर गति, रघुकुल तिलक-ललाम।

आते ही देखा है सारी सेना अस्त-व्यस्त,
प्राप्त पराभव से बिभीत से शोकाकुल संत्रस्त,
सूर्य सूनु, लंकेश अड़े आ, आमुख पर पग थाम।

दोहा

लगे कुचलने लवण दल प्रबल बना निज पक्ष।
नभचारी नारद निपुण ने निरखा प्रत्यक्ष।

भामण्डल-गृह रथनुपर पहुंच गए अविलम्ब।
देखो कैसे लग रहा अधर अभ्र में स्तम्भ।

पूछ रहा सादर प्रणाम कर आज व्यग्रता है कैसी ?
ऐसी ही है बात अरे! पर तेरे तो सुनने जैसी।
पुडरीकपुर पर से उड़ते मिला जानकी का आभास।
निश्चित ही वह वैदेही थी, मुझे हो गया दृढ़ विश्वास।

बोल रहा भामण्डल दुःखित हो, कैसी बातें करते हैं ?
जले-कटे घावों में क्यों अब नमक-मसाले भरते हैं ?
श्वापद-संकुल सिंहनाद वन में जीने की क्या आशा ?
युग बीते, अब गगन कुसुम-सी करना उनकी अभिलाषा।

दोहा

निश्चित जीवित जानकी कहता हूं मैं सत्य।
हैं! जीवित है, पूछता खेचरपति प्रणिपत्य।

* रामायण

बैठा-बैठा क्या यहां बना रहा है बात ?
उठ, जा बैठ विमान मे कर सत्वर साक्षात ।

* आया है भामण्डल भाई,
घनघोर अमा की रजनी में
आलोक किरण अभिनव पाई।
आया है भामण्डल भाई।

यह जनक विदेहा की बेटी
ऊंचे गवाक्ष में थी बैठी,
आंखों में गिरते वाष्प बिन्दु
गहरे चिन्ताम्बुधि में पैठी,
नभचर पति ने पहचान लिया
सीता है निश्चित जान लिया,
फिर झुक कर देखा एक बार
नारद को सच्चा मान लिया,
वर्षों से बिछुड़ी बहिन मिली
सौभाग्य बल्लरी लहराई।
आया है भामण्डल भाई।

अहा ! बुझे दीप में ज्योति जली,
मृत में सजीवन-शक्ति ढली,
पादप से बिछुड़े जीवों की
खिल रही आज तो कली-कली,
कल-कल बहती सूखी सरिता,
मुखरित हो रही मूक कविता,
पाषाण-भेद कर कमल खिला
रजनी में उदित हुआ सविता,

* सहनाणी

सलिला प्लावित है मरुस्थली
पतझड़ में हरिहाली छाई।
आया है भामण्डल भाई।

गीतक छन्द

स्नेह सरवर में निमज्जित बहिन-भाई मिल रहे,
चिर-विरह-दव-दग्ध उनके हृदय-उपवन खिल रहे।
मूक मन है, मूक वाणी, कुछ नही कह पा रहे,
वेदना संवेदना मे उभय बहते जा रहे ॥

* चोटों पर चोटे आती, भाई! मै क्या बतलाऊ?
फटती जाती है छाती, भाई! मै क्या बतलाऊं?

अगुलियों पर यों गिन-गिन,
कैसे काटे दुख के दिन?
बाते वे कही न जाती, भाई! मै क्या बतलाऊ?

जैसे-तैसे बच पाई,
पुण्योदय से यहां आई,
समता से समय बिताती, भाई! मै क्या बतलाऊ?

दोनों भानेज तुम्हारे,
आशा के अमर सहारे,
उनसे थी जी बहलाती, भाई! मैं क्या बतलाऊ?

नारद ऋषि ने सुलगाया,
विद्रोही भाव जगाया,
बच्चे मेंढक बरसाती, भाई! मैं क्या वतलाऊं?

---

* लय—मंगल है आज तेरे शासन मे

लड़ने माकेत गए हैं,
अड़ने साकेत गए हैं,
रह गई मैं तो समझाती, भाई! मैं क्या बतलाऊं ?

दोहा

अरी ! सयानी सोदरी यह क्या किया अनर्थ ?
मैं समझाती रह गई, है इसका क्या अर्थ ?

क्यो उनको जाने दिया, लिया नहीं क्यों रोक ?
वे थे बच्चे, क्यों नहीं दिखलाया आलोक ?

चलो, चलो, जल्दी चले, कही न बिगड़े काम।
पूर्णतया अनभिज्ञ है, उनसे लक्ष्मण-राम।

† चले त्वरित मन पवन-वेग से रण प्रांगण में आए हैं,
लवणांकुश ने जननी के चरणों मे शीश झुकाए हैं।
भामण्डल का परिचय पा, सविनय दोनों ने किया प्रणाम,
गले लगाया, गोद बिठाया, कैसा मधुर मिलन का याम ?

* समझाता मातुल भामण्डल, ऐ! वीरों! जरा विचार करो।
तुम करो न ऐसे उथल-पुथल, धीरों! मन में कुछ धैर्य धरो।

परिपक्व नहीं अब तक अनुभव, आहव करना तुम कब सीखे,
उसमें भी सम्मुख अवधेश्वर, कर शक्ति संतुलित कदम भरो।

तरुणाई की अरुणाई में कर्त्तव्य स्वयं का मत भूलो,
आवेश हटा, विद्वेष मिटा, माता के मन का क्लेश हरो।

मिलना हो तुम्हें पिता जो से तो विनय-भक्ति के साथ मिलो,
हे! सूर्य वंश वैडूर्य जरा अपने कुल का आदर्श-स्मरो।

---

† रामायण
* लय—घनश्याम तुम्हारे द्वारे पर

दोहा

जीते तो भी हार है, हारे तो भी हार।
घर में क्षति, जग में हंसी, अरे ! उभयतः मार ॥

तुमने सोचा मामाजी आए उत्साह बढ़ाने को,
किन्तु आप तो आए हम को उल्टा पाठ पढ़ाने को।
आए इतने दल-बल से, क्या बिना लड़े ही फिर जाएं ?
मान पराजय झुक जाएं ? क्या करें ? आप ही समझाएं।

दोहा

बतलाए किस बात में हम हैं उनसे न्यून।
माता के अपमान पर उबल रहा है खून।

समझ गया मण्डल महिप उनका देख उबाल।
अपने रुख को बदलते, बोल उठा तत्काल।

† वाह ! वीरों जैसी आशा थी
वैसे ही तुम निकले सपूत,
अब मैं भी साथ तुम्हारे हूं
लो, बढ़ो क्रान्ति के अग्रदूत,
है पक्ष हमारा न्यायपूर्ण
अन्यायों का बदला लेंगे,
इन शस्त्रास्त्रों से शौर्य भरा
पूरा-पूरा परिचय देंगे।

दोहा

खेचरपति शर-चाप ले बढ़े छेड़ने युद्ध।
कपिनायक, लकेश का किया मार्ग अवरुद्ध।

* रामायण
† सहनाणी

विद्याधरपति को उधर देख रहे निस्तब्ध ।
सहसा उनके वदन से निकल पड़े ये शब्द ।

भामण्डल ! यह क्या अरे ! रिपु सेना के साथ ।
युद्ध नही है, हो न हो यहा और ही बात ।

आओ भामण्डल ! अपने दल में आओ ।
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ ।

'तुम भूल रहे हो, वह दल नही हमारा ,'
'हां, तुम भूल रहे हो, वह दल नहीं हमारा ।'
'क्यों ? रघुवर से ही है सम्बन्ध तुम्हारा ?'
'हां हां, सीता से ही सम्बन्ध हमारा ।'
सीता न रही तो भी प्रतिबन्ध हटाओ ।
क्यों उधर खडे हो कारण तो समझाओ ।

'सीता न रही तो कहो राम क्या लगते ?'
'ऐसे भामण्डल क्यों बातों में ठगते ?'
'है ठगने की क्या बात ? हाथ सम्भालो ।'
'चलते न अस्त्र भैया ! यह भ्रान्ति निकालो ?
पहले ये दोनों कौन ? रहस्य बताओ !
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ ।'

'आओ ! सन्निकट जरा हो यदि जिज्ञासा ?'
'लो बतलाओ', उत्कट अन्तर अभिलाषा ।
धीमे से बोले—'ये सीता-सुत प्यारे ,
लवणांकुश दोनो, राघव कुल उजियारे' ।
'क्या सीता जीवित ? है तो हमें दिखाओ ?'
क्यों उधर खड़े हो कारण तो समझाओ ।

* लावणी

दोहा

चुपके से चलते बने रथनुपुर पति साथ।
आ बैठे सीता निकट कपिपति, लंकानाथ।

महारथी चलते गए पाया कर-संकेत।
वैदेही के यान में, हुए सभी समवेत।

लवणांकुश के सामने टिका न राघव-सैन्य।
मानो भगदड़-सी मची छाया दुर्दम दैन्य।

* बोले लक्ष्मण से श्रीराम,
देख पलायन अपने दल का विचलित से परिणाम।
बोले लक्ष्मण से श्रीराम।

आता नहीं समझ में भाई !
कैसी विकट परिस्थिति आई,
कौन अयोध्या पर चढ़ आए? क्या हैं इनके नाम?

सचमुच ही ये सबल साहसी,
मन में उठती आह दाह-सी,
पता नही है इस आहव का क्या भावी परिणाम।

कहां सभी वे वीर हमारे,
कहां सभी वे धीर हमारे,
नहीं दीखता है कोई भी गतरम होता काम।

अपने को चलना ही होगा,
रिपु दल को दलना ही होगा,
कलनातीत हुई है यह छलना गतिविधि सारी वाम।

---

* लय—जागो जागो हे नादान

दोहा

उधर वेग से बढ़ रहे लवणांकुश उद्दाम।
रथारूढ सम्मुख अड़े उनसे लक्ष्मण-राम।

† भाई ! लक्ष्मण ये दोनो लगते हैं प्यारे-प्यारे।
लगते है प्यारे प्यारे, जैसे नयनो के तारे।
कहता अन्तर-दिल कोई सम्बन्धी निकट हमारे।
भाई ! लक्ष्मण ये दोनों लगते है प्यारे-प्यारे।

कैसी सुन्दर आकृति है,
मानो अपनी प्रतिकृति है,
रह-रह कर मन में आता
मिलने को बाह पसारें।

आंखे उत्फुल्ल कमल-सी,
मादक-सी और अमल-सी,
अमृत-सा बरस रहा है
मधुवन से मोहनगारे।

कोमल कर कमल-नाल से,
आकर्षक चाल-ढाल से,
सुन्दर अति सरस सलौने
सुगठित है अवयव सारे।

कर-शर कोदण्ड सयाने,
इनको कैसे पहिचाने,
पूछें भी तो कब कैसे ?
किसके ये राज-दुलारे।

---

† लय—मंगल है आज तेरे शासन मे

* अजी ! तुम लड़ने आए।
खड़े-खड़े क्या देख रहे हो यों मुंह-बाए।
बोल रहे लवणांकुश कर-शर-चाप चढ़ाए।
अजी ! तुम लड़ने आए।

यह रण कोई नही तमाशा,
पूछो जो भी हो जिज्ञासा,
समाधान देने शस्त्रास्त्र-शास्त्र हम लाए।

तुम हो महायुद्ध के जेना,
समरागम के पूरे वेत्ता,
हमने सुनी तुम्हारी भारी दन्त-कथाएं।

इन हाथों से रावण मारा ?
एसे जीता भारत सारा ?
लड़ने नहीं, सीखने आए युद्ध-कलाएं।

अंकुश ! हमने क्या जाना था ?
इन्हें विश्व-विजयी माना था,
पर इनकी तो कांप रही हैं अरे ! भुजाएं।

देख रहे हो क्या जी भरके,
दिखलाओ कुछ साहस करके,
हमें सिखाओगे तुम, या हम तुम्हें सिखाए।

† बच्चों तुम ! रहने दो उपदेश, घर को जाओ, जाओ।
लेते क्यों व्यर्थ मोल सक्लेश, घर को जाओ, जाओ।
जाओ ! जाओ ! प्राण बचाओ,
क्या अच्छा है इतना आवेश, घर को जाओ, जाओ।

---

* लय—राग री रेंस पिछाणो

† लय—कैसो निकाल्यो भिक्षु पंथ

किसके कहने से तुम आए,
किसके द्वारा हो उकसाए,
शलभों ! दीपक में झंपापात, यों मत खाओ, खाओ।

बोलो, बोलो है क्या लेना ?
भीषण है रण का पथ पैना,
अड़ने से पहले अन्तिम बार मित्रों से मिल आओ।

हमको तुम पर करुणा आती,
चलती तलवारें सकुचाती,
बच्चो की हत्या का यह पाप रे ! मत व्यर्थ लगाओ।

लेना है जो सैनिक शिक्षा,
शिक्षा केन्द्रों में लो दीक्षा,
बचपन में ऐसे व्यंग-विनोद कर मत मौत बुलाओ।

* कोरी बना रहे हो बात,
थोथी बना रहे हो बात,
या डालो हथियार नही तो लडो हमारे साथ।

करुणा किसी दीन पर करना,
झोली किसी हीन की भरना,
दया-पात्र हम नहीं तुम्हारे क्यों फैलाएं हाथ।

लेना कुछ भी नहीं हमारे,
दहल गये क्यों हृदय तुम्हारे,
हम तो आये, यहां देखने करामात साक्षात।

हम हैं नैसर्गिक संस्कारी,
प्राप्त कर चुके अनुभव भारी,
और तुम्हारी भी तो सारी जान रहे हैं ख्यात।

---

* लय—अरे ! ओ ! भारत के मजदूर

मूल्यवान मत समय बिताओ ,
आओ अब शस्त्रास्त्र उठाओ ,
पहले हमसे लड़ो, अड़ो फिर, भर देंगे आघात ।

† सुनो सैनिकों अब तुम सारे करो महर्ष पूर्ण विश्राम ,
द्वन्द्व-युद्ध चारों में होगा नहीं तुम्हारा इसमे काम ।
सभी देखते रहो शान्त हो भित्ति चित्रवत् बन निष्काम ,
यों कह उतरे समरांगरण में लवणांकुश श्री लक्ष्मरण-राम ।

राघव का स्यन्दन कृतान्तमुख, सौमित्री का वीरविराध ,
वज्र लवरण का, पृथु अकुश का चला रहे हैं अव्याबाध ।
बचा बचा कर पितु-पितृव्य को छोड़ रहे सीता-सुत तीर ,
करते विद्ध शतांग अंग को घायल कर-कर अश्व-शरीर ।

गीतक छन्द

तीक्ष्ण आयुध राम-लक्ष्मरण के घनाघन चल रहे ,
किन्तु उनके अस्त्र ही हा ! आज उनको छल रहे ।
फैंकते हैं किधर, जाते किधर ही, लगते कही ,
साधना-साधित अतः आघात करते है नही ।

रथ चलाओ, कुचल दो, यों कह रहे है सूत से ,
तप्त प्रकुपित राम-लक्ष्मरण हो रहे हैं भूत से ।
करें क्या रथ हुए जर्जर, अश्व घायल हो गए ,
खीचते वल्गा हमारे हाथ दुर्बल हो गए ।

दोहा

लिया हाथ मे राम ने आयुध वज्रावर्त ।
शिञ्जिनी को तान कर शर फैंका पर व्यर्थ ।

---

† रामायरण

एक-एक कर यो सभी अस्त्र गए बेकार।
श्रद्धा, ज्ञान बिना यथा क्रिया न हरती भार।

यों लक्ष्मण के भी सभी है निरर्थ हथियार।
दया-दान संयम बिना ज्यों होते निस्सार।

अति चिन्तन मे हो रहे उभय बन्धु गम्भीर।
और इधर से चल रहे तीखे ताने तीर।

* वाह ! वाह ! तुम तो बडे ही कमजोर निकले,
हमने समझा था और कुछ, और निकले।
बस क्या ऐसे ही चतुर चकोर निकले,
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

हम तो सुनते थे विश्व-विजेता हो,
सारे भारत भू-मण्डल के नेता हो,
किन्तु कोरे बातों के बतकोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

पहिले ही ज्ञान होता तो आते नहीं,
ऐसे इज्जत तुम्हारी गवाते नहीं,
कायरों के ही सच्चे शिरमोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

इतना कहने पर भी एक लगती नहीं,
कैसे धर्मात्मा है ? टीस जगती नहीं,
हम तो कितनी ही बार झकझोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।
थोथे कीले इन बाणो में प्राण है नहीं,
होगा इनसे तुम्हारा भी त्राण तो नहीं,

* लय—अणुव्रत का एलान खुल्ले कान सुनलो

करके एक एक सब को बटोर निकले।
हमने समझा था और कुछ, और निकले।

दोहा

सुन कटु बात विपक्ष की जगता जोश सरोष।
बरसाते बाणावली, करते अति आक्रोश।

किन्तु लक्ष्य को एक भी नही बीधता ठीक।
बिना अंक के शून्य के सख्या यथा अलीक।

गीतक छन्द

सोचते है उभय भ्राता कहां जाए? क्या करे?
समझ में कुछ नहीं आता किसे पूछे? क्या करे?

उत्तरोत्तर शस्त्र मारे आज उत्तर दे रहे,
जो अमोघ अचूक थे वे सब विदाई ले रहे।
शिथिल-सी दोनो भुजाए, ग्रथिल-सा चैतन्य है,
बिना सोचा, बिना समझा, आ गया कार्पण्य है।
हे त्रिलोकी नाथ! त्राता, कहां जाए? क्या करे?
समझ में कुछ नही आता किसे पूछें? क्या करें?

हो रही अज्ञात सिहरन, और कम्पन देह में,
रोष आता, उतर जाता, हृदय डूबा स्नेह में।
बिना अन्तर-दाह कैसे युद्ध हो सकता कहो?
बिना अन्तर-ग्राह कैसे युद्ध हो सकता कहो?
विधि-विधानो के विधाता! कहां जाए? क्या करें?
समझ में कुछ नही आता किसे पूछें? क्या करें?

हृदय कहता मिले; स्थितियां बाध्य करती युद्ध को,
प्रथम ही अवसर हमारा पथ हुआ अवरुद्ध हो।

मिश्र गुण जैसी अवस्था स्वान्त डावाडोल है,
तोल है ना, मोल है ना, इधर मधुर मखोल है।
विकल-सा मन छटपटाता, कहां जाए ? क्या करे ?
समझ मे कुछ नहीं आता किसे पूछे ? क्या करें ?

‡ इतने में अकुश ने अचूक
आकस्मिक बाण चलाया है,
जा लगा वीर वक्षस्थल मे
पल में लक्ष्मण मूर्छाया है,
स्वामी को सज्ञा-शून्य देख
स्यन्दन विराध ने मोड़ लिया,
श्री वासुदेव के जीवन में—
इतिहास अनोखा जोड़ दिया।

† हाहाकार मचा सेना में संकट आ गया रे।
आंखों में अन्धेरी सन्नाटा छा गया रे।

हक्के बक्के सैनिक सारे,
काप रहे है भय के मारे,
अब क्या महाप्रलय होगा रे!
बिगड़ी कौन सुधारे सब का जी घबरा गया रे!

सहसा सचित साहस टूटा,
मानों बान्ध धैर्य का फूटा,
सच्चा सबल सहारा छूटा,
रूठा भाग्य देवता उलटा चक्र चला गया रे!

---

‡ सहनाणी

† लय—सीता माता की गोदी में हनुमत डारी मूंदड़ी

छोटे-छोटे दीख रहे है,
कहते रण हम सीख रहे हैं,
सारे कथन अलीक रहे है,
चीख रहे है मब, क्या इन्द्रजाल आया नया रे!

* पा मृदु मनहारी मन्द पवन
लक्ष्मण ने जब पलके खोलीं,
देखा रथ को वापिस जाते
तत्क्षण अन्तर-आत्मा डोली,
क्या कर डाला? यह रे विराध!
तू मुझे किधर ले जाता है,
रम रहे राम रण-प्रांगण में
क्या लक्ष्मण घर को जाता है।

चल झटपट ले चल मुझे वहा
अंकुश को अंकुश में लूगा,
जाते ही सीधा चला चक्र
वैरी का मस्तक छेदूगा,
बातों-बातों में पहुंच गया
वहां पवन-वेग सीधा स्यन्दन,
कस-कस तीखे ताने हंस-हंस
अंकुश करता है अभिनन्दन।

† रे! अकुश! हो जा अब तैयार।
सस्मित विस्मित सभी सुन रहे लक्ष्मण की ललकार।
रे! अंकुश! हो जा अब तैयार।

---

* सहनाणी

† लय—जगाया तुमको कितनी बार

इतर गया रे ! तू अभिमानी ,
सीमा पार हुई शैतानी ,
नहीं चलेगी अब मनमानी ,
एक बार में ही उतरेगा सारा शिर का भार ।

हमने था इतना समझाया ,
बच्चा जान प्यार दिखलाया ,
उसका यह आभार चुकाया ,
बढ़-बढ़ बोल रहा था, अब चख मेरा एक प्रहार ।

यों कह कर में चक्र उठाया ,
नील गगन में उसे घुमाया ,
मानो अपरादित्य उगाया ,
सरगण भरगणं को ध्वनिना सह उछल रहे अंगार ।

मग्न रह गए दर्शक सारे ,
मर जाएंगे ये बेचारे ,
पता न क्यों ये गए उभारे ,
क्यों आए हैं इनसे अपना करवाने संहार ।

घुमा-घुमा कर जोश जगाया ,
'मार शत्रु' आदेश लगाया ,
त्वरित तड़ित् गति चक्र चलाया ,
छाया है भय महा-प्रलय-सा सारे चित्राकार ।

* वन चक्र अवक्र कर रहा—
है अंकुश का सादर अभिनन्दन ,
देता प्रदक्षिरणा बार-बार
लक्ष्मरण-राघव का चिन्त्रित मन ,

---

* सहनारणी

कर शिथिल हुए, मुह उतर गए,
नयनों में रजनी-सी छाई
अब भाग्य पलटने की भाई!
यह नई चुनौती-सो आई।

क्या वासुदेव बलदेव नए?
दोनों ये धरती पर उतरे,
क्या अच्छरेग होने वाला?
कुछ भी न रहस्य समझ पाए,
रवि होते रवि का उदय हुआ?
तीर्थंकर रहते तीर्थंकर?
अनहोनी यह कैसे होगी?
मस्तिष्क खा रहा है चक्कर।

* कर प्रदक्षिणा अकुश की अब पुन. आ रहा चलना चक्र,
लगा रामलक्ष्मण को ज्यों कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र।
अब यह निश्चित ही आता है करने नर-हरि का संहार,
मुखड़ा कुम्हलाया उत्फुल्ल कमल पर मानो गिरा तुषार।

दशकंधर का इसी चक्र ने इसी रीति से किया विनाश,
दर्शक जन निस्तब्ध खड़े है डोल रहा सब का विश्वास।
आते ही सन्निकट वीरवर ने दक्षिण कर फैलाया,
बैठ गया उसमें रथांग जब, तब कुछ जी में जो आया।

गीतक छन्द

हैं सुनिश्चित ये हमारे निकट सम्बन्धी सही,
अन्यथा चक्राक्रमण यह व्यर्थ यों जाता नहीं।

---

* रामायण

या युगल युगपुरुष युग के अमर भावी त्राण हैं,
अतः इनके पूर्णतः साम्प्रत सुरक्षित प्राण हैं।
दाव कोई चल न पाता कहां जाएं ? क्या करें ?
समझ मे कुछ नहीं आता कहा जाएं ? क्या करें ?

दोहा

यो दोनों का हो रहा अन्तर हृदय अशान्त।
उलझन में तन मन वचन क्लान्त श्रान्त विभ्रान्त।

कान्दिशीक से हो रहे किंकर्तव्य विमूढ़।
पल-पल बढ़ती जा रही व्यथा गूढ़ से गूढ।

* अचानक रंग नया लाए।
बड़ा रहस्योद्घाटन करने नारदजी आए।

देख उचित अवसर धरती पर उतरे अम्बर से,
बस कमी आपकी ही थी, बोले सब एक स्वर से,
कल्पना सागर लहराए।

किया उचित सम्मान सन्त का होता है जैसे,
दीख रहे है आज राम-लक्ष्मण ऐसे कैसे ?
वदन सरसिज क्यों कुम्हलाए।

दोहा

बाबा बूढ़े हो गए छूटा नही स्वभाव।
रे! ऋषिवर! क्यों कर रहे यों घावों पर घाव।

दुःख-दाह से हो रहा मन तो जल-भुन खाक।
और आपको सूझती, ऐसे समय मजाक।

* लय—तावड़ा धीमों पड़ज्या रे

आए हमको पूछने क्या न देखते आप ?
धरा पराई हो रही प्रतिहत पुण्य-प्रताप।

* नहीं मुझे तो एसी स्थितियां देती दिखलाई,
यों मत व्याकुल बनो जरा धीरज रक्खो भाई,
धैर्य के फल मीठे गाए।

खिलने के अवसर पर क्या कोई यों मुरझाता,
मिलने के अवसर पर क्या कोई यों सकुचाता।
विकलता तुम जैसे पाए।

दोहा

की सेवा जो आज तक उसका यह परिणाम।
राज्य पराया हो रहा, कहते अच्छा काम।

होश उड़ रहे है यहां, आप रखाते स्थैर्य।
हाथ जोड़ते दूर से धन्य आपका धैर्य ?

त्यागी सन्यासी बने करना था परमार्थ।
किन्तु आप तो कर रहे, पिशुन नाम को सार्थ।

* ऋषि तो भक्तों को परमार्थ-पथ ही दिखलाते,
पर बिरले मर्मज्ञ समझते सन्तों की बातें,
अगर अन्तर-पट खुल जाए।
बड़ा रहस्योद्घाटन करने नारदजी आए।

सभी शान्त हो जाओ मेरी सुनो ब्रह्म-वाणी,
रामचन्द्रजी के थी सीता नामक महारानी,
जगी सब मे जिज्ञासाए।

* लय—तावटा धीमो पडज्या रे

दोहा

अरे ! आग में क्यों मुने ! सींच रहे हो आज्य।
और व्यथित तो मत करो जाने दो साम्राज्य।

* कर कलंकिता उसे राम तो वन में रख आए,
किन्तु शील का बल था उसमें महिरुह सरसाए,
सहज ही टली आपदाएं।

उसके नन्दन नयनानन्दन इनको पहिचानो,
छोड़ रोष आक्रोश, कथन मेरा सच्चा मानो,
दूर हों सारी दुविधाएं।
आंख खोल कर जरा ध्यान दे, एक बार झांको,
इनमें अपना अंश आंक सकते हो तो आंको,
अधिक क्या अब हम समझाएं।

† जी में आए सो मुझे कहो
भाई ! मैं हूं घर का योगी,
पर अस्त्र तुम्हारे रहे अफल
कुछ तो दृग् दौड़ाई होगी ?
इतना भी चिन्तन कर न सके
जब चक्र सुदर्शन नहीं चला,
यों बिना तुम्हारे पुत्रों के
अड़ सकता ऐसे कौन भला ?

ये दलबल सबल सभा करके
अपनत्व दिखाने आए हैं,
पतिता के सुत या प्रतिव्रता—
के तुम्हें बनाने आए हैं।

---

* लय—तावड़ा धीमों पड़ज्या रे

सत्पुत्र कभी यों माता का
अपमान नहीं सह सकते हैं,
पाते ही सचमुच शुभ अवसर
वे मौन नही रह सकते हैं।

गीतक छन्द

सुधा-स्रावी शब्द सुन ये हृदय गद्गद् हो गए,
प्रम के अविरल अनन्त अथाह जल में खो गए।
उतर रथ से छोड़ आयुध, उभय मिलने जा रहे,
इधर लवणांकुश समुद सानन्द, सविनय आ रहे।

* कुछ लज्जित से, कुछ सज्जित से
चरणों में शीश झुकाते हैं,
नहलाते लोचन धारा से
दोनों को गले लगाते है,
शर पर रख कर कर बार-बार
कोमल तन को सहलाते हैं,
शुक्ल-ध्यानी ज्यों एक चित्त
उनमें तन्मय हो जाते हैं।

† स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड़ पड़ी है अविरल गति से पुत्र-प्रेम की उज्ज्वल धारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।
उमड़ पड़ी है अविरल गति से पितृ-प्रेम की उज्ज्वलधारा।

पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम मुदित मन मिलते हैं।
शशि को देख सिन्धु, रवि-दर्शन से पङ्कज ज्यों खिलते हैं।
विनय और वात्सल्य बरसता है भींगी पलकों के द्वारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

---

* सहनाणी
† लय—प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर

रण भी कारण बना हर्ष का गौरव से मन फूल रहे।
अंकुश के उस अविनय को आनन्दित लक्ष्मण भूल रहे।
भूल रहे है सुख सरवर में दृश्य लग रहा प्यारा-प्यारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

पुत्र पिता से बढकर क्या? सम्बन्ध दूसरा होता है?
पुत्र पिता से बढकर क्या? अनुबन्ध दूसरा होता है?
यदि स्वार्थो की पडे न छाया, चढे न पक्षपात का पारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

लव-कुश से विनयी विजयी है कितने आज सुपुत्र कहो?
कितने घर हैं आज स्वर्ग से जहां पुत्र उत्सूत्र न हो?
और पिता भी कहां राम का दिखलाएं आदर्श उजारा?
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

एक दूसरे को अनिमिष से, अनिमिप दृष्टया निरख रहे।
एक दूसरे के भावों को, भावुक बन कर परख रहे।
बदला वातावरण समूचा, चमका रघुकुल सुयश सितारा।
स्नेह-सुधा से सिंचित कण-कण आज अयोध्या का सारा।

दोहा

पा खगपति की प्रेरणा वज्रजंघ-सत्कार।
बार-बार करने लगे, राम व्यक्त आभार।

आप हमारे परमप्रिय भामडल के तुल्य।
चुका सकूंगा मैं नहीं इस उपकृति का मूल्य।

सोरठा

तत्क्षण बैठ विमान, मिलन देख कर मैथिली।

अपने पुत्रों को लेकर पुर में राम आ रहे।
हृदय सब के हर्षा रहे,
परम आनन्द मना रहे।

सज्जित है नगरी सारी,
सोत्सुक है सब नर-नारी,
हो हो उद्ग्रीव पथ पर पलक बिछा रहे।

दर्शक आगे से आगे,
जाते हैं भागे-भागे,
अनुशासन के नियमों को अटल निभा रहे।

पथ की है उचित व्यवस्था,
गति-विधियां सारी स्वस्था,
जय-जय ध्वनि से धरणी अम्बर गुजा रहे।

राघव सौभागी कैसे ?
घर आए नन्दन ऐसे।
यों जन-जन मुक्त कण्ठ से महिमा गा रहे।
दशरथ सुत प्रमुदित आनन,
बरसाते जलधर बन घन,
सबको कर तुष्ट पुष्ट उत्साह बढ़ा रहे।

† ऊंचे छज्जों पर, छत पर हैं
समवेत नगर की महिलाएं,
उस समय उन्हें कुछ पता नहीं
रह गए कहा शिशु-बालाएं,
सुध-बुध भूली सबकी पलकें
थी लवणांकुश पर बिछी हुई,

* लय—यह है जगने की वेला
† सहनाणी

आंखों के आगे नाच रही
छवि बिना यंत्र के खिंची हुई।

सबका अभिवादन झेल रहे
सविनय समुदित सुकुमार युगल,
प्रतिपल विकसित मानस शतदल
हर्षातिरेक से रहे उछल,
है सफल सुफल सब आशाएं
आनन्दाप्लावित अन्तस्तल
उल्लसित वायुमण्डल सारा
पग-पग जय-जय मंगल-मंगल।

: ७ :

अग्नि-परीक्षा

गीतक-छन्द

समय वर मध्याह्न का रवि मध्य है आकाश में,
शिखर पर पहुंचा यथा यौवन प्रपूर्ण प्रकाश में।
क्षेत्र छाया का सुविस्तृत हो रहा संक्षिप्त है,
त्याग से अविरति घटाता श्राद्ध ज्यों निर्लिप्त है।

श्रमिक सारे श्रम-परायण कार्य में रत हो गए,
यथा सज्जन जन सहर्ष परोपकृति में खो गए।
गृहिणियां गृह-कार्य निरता, छात्र शिक्षण मे लगे,
यथा योगी-चेतना हो स्वात्म वीक्षण मे लगे।

कर रहे है श्राद्ध सामायिक श्रमण-समुपासना,
सुन रहे उपदेश मुनियों का मिटाने वासना।
आलसी खा-पी खुशी से तान खूंटा सो रहे,
व्यर्थ बातों में कई अनमोल अवसर खो रहे।

दोहा

शान्त मना एकान्त मे बैठे है श्रीराम।
भोजन से विनिवृत्त हो करने को विश्राम।

सौमित्री, शत्रुघ्न त्यों, पवनपुत्र, सुग्रीव।
लकापति, अंगद प्रमुख आए मिल उद्ग्रीव।

कर स्वीकृत अवधेश ने सबका सविधि प्रणाम।
आए कैसे इस समय? पूछा क्या है काम?

प्रतिनिधित्व करते हुए बोले लक्ष्मण आर्य!
आज एक अभ्यर्थना आवश्यक अनिवार्य।

* अब भी हो जरा विचार, विश्व आधार, राम के द्वारा।
सीता का कौन सहारा ?

पति-पुत्र विरह की जो तीखी असिधारा।
सीता का कौन सहारा ?

प्रभु को ऐसे ये पुत्र मिले,
कुल-सम्बर्धन के सूत्र मिले,
सोचें, यह किसका सफल उपक्रम सारा।

कह कलंकिता वन में छोड़ा,
बेचारी को तृण ज्यों तोड़ा,
कर भीषणतम अपमान उसे दुत्कारा।

पुत्रों से समय बिताती थी,
ज्यों-त्यों कर मन समझाती थी,
वे भी न वहां अब कहो, रहा क्या चारा ?

उसका भी तो कुछ जीवन है,
रघुकुल का जो संजीवन है,
इस ओर किसी ने अब तक नहीं निहारा।

यों जीवन कितना दुर्भर है,
पल-पल पल्योपम सागर है,
कसले जीवन से वह नां कहीं किनारा।

आज्ञा हो तो मिलकर जाएं,
अब ससम्मान हम ले आएं,
आशा है प्रभु मानेंगे विनय हमारा।

बदला है वातावरण सभी,
अच्छा अवसर यह प्रभो ! अभी,
'सुज्ञेषु किमधिकं' है पर्याप्त इशारा।

---

* लय—है सद्गुरु एक सहारा

गीतक-छन्द

अहुत अच्छी मन्त्रणा दी समय पर आकर मुझे,
हो गया विश्वास, विजयी-पुत्र दो पाकर मुझे।
शीघ्र जाओ, मना लाओ, है सती सीता सही,
कहे कुछ भी लोक, मानूगा न अब मैं एक ही।

दोहा

सत्वर पुष्पक-यान ले चले कपीश्वर आर्य।
पुतला आहारक का यथा करने अपना कार्य।

पुंडरीकपुर में पहुंच वैदेही के पास।
बद्धाञ्जलि अनुनय-विनय करते है सोल्लास।

महासती! अब हम पर महर करें,
चले अयोध्या रघुवर अन्तर क्लेश हरें।

कुल कमले! कमनीय कले! अमले! अचले! सन्नारी!
महज सुव्रते! सौम्य सुशीले! अननुमेय अविकारी।
होंगे हम सब आभारी;
शुभ-दर्शन दे सरस सौख्य वितरें।

भेजा पुष्पक यान राम ने ससम्मान ले आने,
आया मैं उनसे ही प्रेषित विधिवत् आज बुलाने,
यह विनय दास की माने,
वदन-सोम से स्वीकृति-सुधा झरें।

हुआ आपके पुण्योदय से परम हर्ष घर-घरमें,
बढ़ी सौगुनी माता की शोभा साकेत नगर में,
पर पीड़ा प्रभु के स्वर में,
रत्न-प्रसूते! अपना स्थान वरें।

—जय जय जगमग विद्या ज्योति जरे

दोहा

कपिपति मै भूली नहीं वह भीषण कान्तार।
नही और अब चाहिए स्वामी का सत्कार।

हाथ जोड़ती दूर से उनको मै महाराज।
क्या करना अब शेष है बुला रहे जो आज।

हां ! रह-रह उठता मनसि एक अवश्य विचार।
ज्यो-त्यो उतरे शीश से यह लाछन का भार।

नही चाहती हू मरू, मै यह लिए कलक।
कह दो जा उनसे यही मेरी बात निशक।

यदि करवाए निकष तो मै आने तैयार।
जो भी वे आदेश दें, है सहर्ष स्वीकार।

गीतक छन्द

आ कपीश्वर ने सुनाया नही आती जानकी,
है न उसको फिर अपेक्षा आर्य के सम्मान की।
नही होना, जा अयोध्या अब अधिक बदनाम है,
स्पष्ट कहती राम से मेरे न कोई काम है।

राम की जो थी धरोहर सौंप दी वह राम को,
बुला पतिता को कलकित कर रहे क्यो नाम को।
हां, कलंक उतारने जब कहें आऊंगी वहा,
जो कहेगे, दे परीक्षा, मैं दिखाऊंगी वहा।

यह सुनते ही राघव के चेहरे पर आई चमक नई,
रोमोद्गम-सा हुआ युगल पलकें तत्क्षण छलछला गई।
है सीता मे इतनी दृढ़ता, है सतीत्व पर इतना जोश,
अटल आत्म-विश्वास सबल बल, बतलाता उसका उद्घोष।

* रामायण

शीघ्र उसे ले आओ, दिखलाए जनता को सही स्वरूप,
होगी उचित व्यवस्थाए, सारी उसके मन के अनुरूप।
मै सहर्ष सहमत हू, सीता आकर अग्नि-परीक्षा दे,
गौरव बढ़ा सूर्य-कुल का, इस जड़ जनता को शिक्षा दे।

दोहा

किष्किन्धाधिप ने दिया, जा सुखकर संवाद।
वैदेही के हृदय में उमड़ पड़ा आल्हाद।

तत्क्षरण बैठ विमान में पहुंच गई साकेत।
रुकी महेन्द्रोद्यान में हुए सभी समवेत।

लक्ष्मरण शत्रुघ्न आदि ने किया चरण संस्पर्श।
अब राघव से चल रहा गुप्त विचार-विमर्ष।

मैं लज्जित हूं सीता ! जो कुछ अनहोनी यह बात हुई,
अपने दृढ़ सम्बन्धों की हा ! अकस्मात् ही घात हुई।
धन्य-धन्य है तेरा साहस, धन्य-धन्य है सबल सतीत्व,
दिखा रहा साक्षात युगल पुत्रों का शौर्य भरा व्यक्तित्व।

उस पर भी यह अग्नि-परीक्षा देने का जो दृढ़ सकल्प,
दिखलाता साकार सत्य-बल और शील का ओज अनल्प।
किन्तु तोल लेना अपने को अति दारुण दुष्कर है काम,
हो न कही परिणाम चलित, यों धीमे स्वर से बोले राम।

† किस भ्रम में भूले हो स्वामी !
मर्यादा पुरुषोत्तम नामी,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी !

---

* रामायण
लय—प्रभु वासुपूज्य भजले प्राणी

जोवन भर मैं साथ रहो,
फिर भी पाए पहिचान नहीं,
कहलाते हो अन्तर्यामी,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी!

थीं कितनी विपदाएं झेली,
मैं तो प्राणों पर थी खेली,
रही प्रतिपल प्रभुपद अनगामी,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी।

अपने तन-मन को टंटोलो,
मेरी सौगन्ध सत्य बोलो,
क्या देखी मेरे में खामी,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी!

इस अबला से आक्रोश किया,
किस भव का बदला हाय! लिया,
हित कामी बन यों प्रतिगामो,
किस भ्रम में भूले हो स्वामी!

नहीं, नहीं, मेरे मन में तो शंका जैसा कोई तत्त्व,
दयिते! अप्रतिहत आस्था है मानों ज्यों क्षायक सम्यक्त्व।
जड़-जन का उन्माद मिटाने सचमुच यही अचूक दवा,
सफल परीक्षण हो जाने से हो जाएगी शुद्ध हवा।

दोहा

वनिते! बुरा न मानना आशय मेरा स्पष्ट।
क्षमतक्षामणा त्रि-त्रिविध करूं हुआ जो कष्ट।

प्रमुदित मना मनस्विनी, बोली गिरा गम्भीर।
एक नहीं जितनी कहो, करूं परीक्षा धीर।

* कहो ज्यों दिखलाऊं, मेरा अटल सतीत्व।
कहो ज्यों बतलाऊं, मेरा अडिग सतीत्व।

पावक की ज्वाला झेलूं,
या पन्नग से भी मैं खेलूं,
अत्युष्ण कोश भी पी जाऊं, मेरा अटल सतीत्व।

उत्तप्त उठाऊं गोला,
खाल मैं जलता-शोला,
मैं रिक्त तुला पर तुल जाऊं, मेरा अटल सतीत्व।

अम्बर में अधर रहूं मैं,
आतप अत्युग्र सहूं मैं,
जल में स्थल, स्थल में जल लाऊं, मेरा अटल सतीत्व।

दोहा

अन्तिम निर्णय में हुआ निश्चित अग्नि-स्नान
सत्वर सब होने लगा एकत्रित सामान.

अति विशाल समतल धरा, देख एक उपयुक्त।
स्थान परीक्षा का वही माना सबने युक्त।

‡ खुदवाई मध्योमध्य एक
गहरी लम्बी चौड़ी खाई,
जिससे समुपस्थित जनता को
वह दृश्य दे सके दिखलाई,
खैरों के लक्कड़ चीर-चीर
आद्यन्त उसे भरवा डालो,

---

‡ लय—दीपांवा ले नन्द

* सहनाणी

जाज्वल्यमान वैश्वानर से
प्रज्वलित उसे करवा डालो

दोहा

समुपस्थिति अनिवार्य है, प्रातः सबकी अत्र।
उद्घोषित यह घोषणा यत्र तत्र सर्वत्र।

चीर क्षितिज की छाती भास्कर नभ प्रांगण में चढ़ता है,
मुनि ज्यों बन्धन-मुक्त साधना-पथ पर आगे बढ़ता है।
अरुण अरुण है, अरुण व्योम है, अरुण सलिल है, अरुण धरा,
तरुण अरुणता लिए ज्योतिमय रूप मैथिली का निखरा।

अम्बर से अम्बर मणि की, नव किरणें भू पर उतर रहीं,
अग्नि-कुण्ड की ज्वालाए, अम्बर छूने को उभर रहीं।
रवि किरणों की ज्वालाओं की फैल रही है प्रखर प्रभा,
है विशाल उस जन-समूह के आनन पर अत्युग्र विभा।

गीतक छन्द

जिधर देखो उधर मानव मेदिनी समवेत है,
उधर सूना-सा समूचा हो रहा साकेत है।
भीड़ पारावार की ज्यों उमड़ती ही जा रही,
हा, बड़ा अन्याय है—ध्वनि एक ही बस आ रही।

कौन कहता रे ! अभागा, सती है ना जानकी,
स्पष्ट देवी रूप जो, प्रतिमूर्ति-सी भगवान की।
चमचमाता भाल इसका स्वयं साक्षी सत्य का,
आग मे यो होम देना काम है क्या तथ्य का।

---

* रामायण

हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।
वन में नहीं मरी तो अब पावक में इसे जलाते ।

कैसे ये पाषाण हृदय हैं करुणा जरा न आती,
क्या अपनी अर्धांगिनी अबला ऐसे मारी जाती ?
नहीं मानते कही सुनी मनमानी सदा चलाते ।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।

कितने गए शिष्टमंडल, कर अनुनय-विनय मनाने,
किन्तु एक की भी न चली यह क्या सूझी, क्या जाने ?
लब्धप्रतिष्ठ सभी हारे है समझाते-समझाते ।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।

जब से इस घर में आई इसने दुःख ही दुःख देखा,
पता नहीं बेचारी के कैसी कर्मो की रेखा ?
कौन करे क्या ! जब रक्षक ही यों ! भक्षक बन जाते ।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।

हरा दिया राघव-लक्ष्मण को, इसके नन्दन ऐसे,
वीर-प्रसूता वह हो सकती है कलंकिता कैसे ?
लेना अन्त किसी का अनुचित नीतिकार बतलाते ।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।

यह सप्तार्चि सर्वाशी पलभर में भस्म करेगी,
सुकुमाला बाला गुणमाला हा ! बेमोत मरेगी,
देख-देख इसकी आकृति सबके अन्तर अकुलाते ।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते ।

---

* लय—हाय राम इण मिनखा देही स्यू

छाती पर रख हाथ स्वयं की करते क्यों न समीक्षा,
क्या सीता की तरह राम दे देंगे अग्नि-परीक्षा ?
समझे कौन रहस्य ? हो रही तरह-तरह की बातें।
हाय ! राम इस सीता को जीती न देखना चाहते।

दोहा

बान्धे समुचित रूप से बड़े-बड़े मंचान।
बैठे दर्शक जन सभी अपने-अपने स्थान।

उच्च मंच से कर रहे श्री राघव उद्घोष।
हो जाओ खामोश सब, हो जाओ खामोश।

सुनो-सुनो साकेतवासियों ! सीता शौर्य दिखाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं,
नहीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कुछ मोल नहीं,
कड़ी कसौटी पर कस अपनी अभिनव ज्योति जगाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

वैदेही के पार्थिव तन पर अधिक मोह-अनुराग न हो,
नहीं निखर सकता व्यक्तित्व स्वयं का जब तक त्याग न हो,
सत्य-शील-बल से जीवन-मन्दिर पर कलश चढ़ाएगी।
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

सुनें ध्यान से जनक-सुता अब जो अपने उद्गार कहे,
नहीं बाल भी बांका होगा सारी जनता शान्त रहे,
अटल आत्म-विश्वास पूर्णतः सती सफलता पाएगी,
सूर्यवंश की विजय-पताका भूतल पर लहराएगी।

---

* लय—आज हिमालय की चोटी से

* उज्ज्वल मंजुल परिधान लिए
ज्यो ही वैदेही हुई खड़ी,
शारद शशधर की सी किरणें
मानों ! मुखड़े पर फूट पड़ीं,
सौगुना रूप तब चमक उठा
तेजोमय भव्य ललाट छटा,
निकला हो मानो तिग्म-भानु
कर तितर-बितर घनघोर घटा ।

सबकी आंखे हैं उसी ओर
वे सकरुण भाव विभोर सभी,
मानों राकेश्वर-दर्शन को
उत्सुक है चतुर चकोर सभी,
है सहज शान्त अति सौम्याकृति
धृति झलक रही है, ढुलक रही,
किंचित् भी भय का काम नहीं
वह पुलक रही है, मुलक रही ।

दोहा

ब्रह्मचर्य के तेज से है कण-कण उद्दीप्त ।
भाव-भरे स्वर मे दिया संभाषण संक्षिप्त ।।

† जीवन की यह स्वर्णिम वेला मेरे अग्नि-स्नान की ।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की ।
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम् ।

जागृत महिला का महत्त्व इस महि-मडल पर अमर रहा,
जिसने प्राण-प्रहारो सकट, प्रण को रखने सदा सहा,

---

* सहनाणी

† लय—आओ बच्चों तुम्हे दिखाएं झांकी हिन्दुस्तानी की

उसके यशका उज्ज्वल अविरल अविकल अविचल स्रोत बहा,
दिखलाया है हृदय खोलकर समय-समय वीरत्व अहा,
कड़ी जुड़ेगी उसमें मेरे इस उन्नत अभियान की।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

मैने स्वीकृत किया पतिव्रत, अपना धर्म निभाने को,
अन्तः-स्फुरणा से इस मानवता का मान बढ़ाने को,
भारतीय संस्कृति का गौरवमय इतिहास दृढ़ाने को,
अपने उत्तम श्रावकत्व पर अभिनव चमक चढ़ाने को,
साक्षी है मेरे मन की त्रिभुवन भास्कर भगवान की।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

इतनी कठिन परीक्षा देते किंचित् नहीं विषाद है,
सत्य शपथ से कहती मन में अपरिमेय आह्लाद है,
चिर आकांक्षित सफल हो रहा मेरा अन्तर नाद है,
धुल जायेगा सहज सदा को झूठा जन-अपवाद है,
यों कह दृढ़ संकल्प सुनाती उच्च स्वर से जानकी।
बलिदानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

† रवि, चन्द्र, दिशाएं, लोकपाल,
धरणी, अम्बर, अगणित तारे,
सर्वज्ञ स्वर्वदर्शी अनन्त
भगवन्त सिद्ध साक्षी सारे,
मन से, वाणी से, काया से
सोते-जगते श्रीराम छोड़,
की नहीं किसी की आकांक्षा
मैंने वैकारिक दृष्टि जोड़।

---

† सहनाणी

दोहा

मैं सच्ची हूं तो बने, पावक निश्चित नोर।
झगिति जलादे अन्यथा मेरा मृदुल शरीर।

इधर उठ रही होलियां, हुई बोलियां बन्द।
चित्रांकित से हो रहे, सब नीरव निस्पन्द।

मंगल लोकोत्तम शरण, विघ्नहरण हैं चार।
अर्हदतनु, मुनि, धर्म को रटती बारं-बार।

नमोक्कार वर मन्त्र जप करके हृदय विशाल।
जलती ज्वाला कुण्ड में कूद पडी तत्काल।

सबने देखा स्मितमना अटल सतीत्व प्रभाव।
हुआ हुताशन स्थान में लहराता तालाब।

* देखो पावक पानी-पानी,
वह अग्नि-परीक्षा अटल बनी।
सीता सतीत्व की सहनाणी,
देखो पावक पानी-पानी।

सरवर हो रहा तरगांकुल,
खिल रहे कमल उत्पल शतदल,
भीनी-भीनी-सी मधुर-मधुर,
नीलाम्बर में उड़ती परिमल,
वैदेही के यश ज्यों उज्ज्वल
क्रीड़ा करता हंसों का दल,
रह-रह आता शीतल समीर,
लहराता जिससे ऊर्मिल जल।

---

* सहनाणी

मानो लहरे उठ-उठ सहर्ष,
कर रही सती की अगवानी।
देखो पावक पानी-पानी।

मणि-मंडित स्वर्णिम सिहासन
कर रहा सूर्य-सा उद्भासन,
है समासीन उस पर सीता
सुख पूर्वक साधे पद्मासन,
मानो मराल पर सरस्वती,
उत्पल पर कमला कलावती।
सद्ज्ञानोपरि सम्यग्-श्रद्धा,
त्यों हुई सुशोभित महासती।
पल में कैसा पलटा पासा,
इसको खोजे अनुसन्धानी।
देखो ! पावक पानी-पानी।

छन्द

आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है,
उधर निरन्तर हरा-भरा उपवन खिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

स्रोत बिना पत्थर को चीरे बह न सकेगा,
स्रोत मार्ग की बाधाओं को सह न सकेगा।
स्रोत कभी भी मौन धारकर रह न सकेगा,
अपनी अन्तर-वाणी पूरी कह न सकेगा,
इसमें अभिनव निर्मलता है, ऊर्मिलता है।
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

दुष्कर अति दुष्कर है उसे प्रवाहित करना,
सुविधाओं को त्याग, झेलना होता मरना।

ध्येय-ध्यान एकत्व लिए इसमें संचरना,
विपदाओं से नहीं; सुखों से पड़ता डरना।
वही धन्य जो रखता इसको अविकलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

जिसने ब्रह्म पा लिया उसने सब कुछ पाया,
त्वरित असम्भव को भी सम्भव कर दिखलाया।
शूली को सिंहासन, अहि को हार बनाया,
वज्र-कपाटों को पल भर में तोड़ गिराया।
तत्क्षण ही सहकार बिना बोये फलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

कच्चे धागे से छलनी में नीर निकाला,
बना स्वतः पीयूष, प्राणहारी विष प्याला।
लांघ न पाया रेख मृगाधिप भी मतवाला,
जंजीरों का बन्द खुल गया, टूटा ताला।
बिना स्नेह बाती के दीपक भी जलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

खींच-खींच कर हारे चीर न गए उतारे,
लगे किसी को और किसी के कौड़े मारे।
घोर अमा में भी दिखलाए चांद औ' तारे,
तो यह पावक-पानी हो क्या दृश्य नया रे!
वही सफल हो सकता जिसमें अविचलता है,
आत्म-शक्ति का स्रोत जिधर भी बह चलता है।

दोहा

आंखें पथराई रहीं, देख शील साकार।

करतल ध्वनियों से ध्वनित भू-नभ एकाकार।
जन-समूह में हो रहा मुख-मुख जय-जयकार।

कण-कण में पौरुष जगा हुई पुष्प बौछार।
नमस्कार करते सभी झुक-झुक बारम्बार।

उठे झनझना वाद्य सब गीतों के स्वर-तार।
मानव-मन उत्साह का कोई आर न पार।

प्रगटे सत्य, सतीत्व पर श्रद्धा के संस्कार।
अपने अपने कर रहे सभी व्यक्त उद्गार।

धन्य हे! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।
बलिहारी जाएं, शील की महिमा महकाएं।

बहुतों को हो मिल जाता है मानव का आकार,
किन्तु निकाला अरे! मानिनी! तू ने सच्चा सार,
है संसार समूचा आभारी हम क्या गौरव गाएं?
धन्य हे! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

सुख में तो सब दिखलाते हैं अपना-अपना स्वत्व,
किन्तु कष्ट में जो दिखालाए उसका महा-महत्त्व।
कैसा मिला तत्त्व संस्कृति को विस्मृति कभी न कर पाएं।
धन्य हे! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

सारा जीवन सत्य-शील का रहा ज्वलन्त प्रमाण,
एक-एक घटनाओं पर न्यौछावर कर दें प्राण,
तुमहो त्राण-शरण संस्कृतिकी कृतियां क्या क्या बतलाएं?
धन्य हे! महासती! महाभाग! तुम्हारी बलिहारी जाएं।

सुनो जहां ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।
जो जीवित प्रतिमूर्ति सत्य को ब्रह्मचर्य की अटल निशानी।

लय—म्हां र सतगुरु करत विहार
लय—बापू की यह अमर कहानी

धधक रही थी धांय धांय जो सांय सांय कर जलती थी,
गगन चुम्बिनी भीषण लपटें कोसों दूर उछलती थीं,
सीता के पावन सतीत्व से अग्नि हुई पानी-पानी।
सुनो जहां ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

छोड़ो बात आज की, याद करो वह दृश्य स्वयवर का,
वज्रावर्त धनुष चढ़ाते क्या साहस था रघुवर का?
सीता के पावन सतीत्व से फली कामना मन-मानी।
सुनो जहां ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

भूल गए क्या आंजनेय ने अतल महार्णव पार किया,
नाग-पाश को तोड़ा कैसा रावण का सत्कार किया?
सीता के पावन सतीत्व से लाया भूषण सहनाणी।
सुनो जहां ही गूंज रही है महासती की अमर कहानी।

अरे! सुना क्या कभी अमोघ शक्ति ऐसे बेकार गई,
लक्ष्मण ने नव संजीवन पा, संस्थापित की ख्यात नई,
सीता के पावन सतीत्व से मारा रावण अभिमानी।
सुनो जहां ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

सिंहनाद उस महारण्य में जीने की भी क्या आशा?
टूट चुकी थी राघव को तो मिलने की भी अभिलाषा,
सीता के पावन सतीत्व से प्रकटो परम पुण्यवानी।
सुनो जहां ही गूज रही है महासती की अमर कहानी।

इतने में ही बढ़ा अनुश्रुत शान्त सलिल का भीषण वेग,
बहने सब मंचान लगे फैला जनता में अति उद्वेग।
त्राहि-त्राहि मच गई क्षणों में आकुल-व्याकुल हुए सभी,
अरे! हुआ क्या? अरे! हुआ क्या? हो जाएगा प्रलय अभी।

---

* रामायण

इधर-उधर जन लगे भागने किन्तु न पाते त्राण कहीं,
ऐसा लगता है अब तो ये बच पाएंगे प्राण नहीं।
बच्चे, बूड्ढे, अरुण तरुण सब करते आक्रन्दन चीत्कार,
चढ़ता ही जाता है पानी कहीं दीखता आर न पार।

यह क्या अम्बुधि उलट गया है या है कुपित देव माया,
या निन्दा की महासती की उसका यह प्रतिफल पाया।
हे! भगवान! करें क्या? कैसे शान्त बने यह पारावार,
हो बद्धाञ्जलि बार-बार करुण स्वर से कर रहे पुकार।

जय सीता माता,
तेरे बिना न कोई जगदम्बे! त्राता।
जय सीता माता।

महासती अब अपनी लो समेट माया। (मां)*
तेरी सबल शक्ति का है परिचय पाया।

पतिव्रते! हे सुमते! कल्पलते! देवी!
चंचरीक हम सब है चरण-कमल सेवी।

अधम अधमता करता, बड़े-बड़े होते।
अधमों के अघ-दल को उत्तम जन धोते।

हम अपराधी सारे क्षमा हमें कर दो।
करुणा पलक पसारो, यह संकट हर दो।

सोरठा

सुन जनता की आह! दोनों हाथों से सपदि।
कर आकृष्ट प्रवाह सीता ने सीमित किया।

---

* लय—ॐ जय भिक्षो! दैपेय!

मुख-मुख मंगल ही मंगल है,
गूज रहा अम्बर भूतल है।
मुख-मुख मंगल ही मगल है।

मिट्टी के कण-कण में मंगल,
जन-जन के तन-मन में मंगल,
सरवर, तरुवर, वन-राजी में
महक रही महिमा परिमल है।

विकच वदन लवणांकुश आते,
सविनय चरणों में लुट जाते,
दोनों ओर सुशोभित मां के,
यथाख्यात सह ज्यों केवल है।

सपरिवार राघव बद्धाञ्जलि,
देते हैं शत-शत श्रद्धाञ्जलि,
मुक्त-कण्ठ गुण-गान कर रहे,
किया सूर्य-कुल को उज्ज्वल है।

है हर्षातिरेक में लक्ष्मण,
चरण-स्पर्श कर रहे प्रति क्षण,
श्री शत्रुघ्न, विभीषण कपिपति
सबके विकसित हृदय कमल हैं।

आए नारद नृत्य रचाते,
सतत शील की महिमा गाते,
पैर न टिकते पवन-पुत्र के
पुलकित बांसों रहे उछल हैं।

---

* लय—अमर रहेगा धर्म हमारा

महासती की जय हो, जय हो,
अटल सतीत्व शौर्य अक्षय हो,
आह्लादित यों सारी जनता,
सीता का अभियान सफल हो।

जय ब्रह्मचर्य ! जय व्रत शेखर ! जय हो, जय हो, जय हो।
जय ज्योतिर्धर ! जय प्रभा-प्रखर ! जय हो, जय हो, जय हो।

तप में तू सर्वोत्तम तप है,
जप में तू सर्वोत्तम जप है,
रवि से बढ़कर उग्रातप है,
तू शीतल ज्यों शारद शशधर जय हो, जय हो, जय हो।

तू जीवन का उन्नायक है,
साधक का भाग्य विधायक है,
सन्तों का सदा सहायक है,
वांछित दायक हे मंगलकर ! जय हो, जय हो, जय हो;

तू अनुपमेय है, अनुपम है,
दुर्जेय, दुरनुचर, दुर्गम है,
संयम-रक्षण में सक्षम है,
यम-नियम सभी तेरे अनुचर, जय हो, जय हो, जय हो,

तू ही गन्तव्य हमारा है,
तू ही मन्तव्य हमारा है,
तू ही कर्तव्य हमारा है,
तू सदा नव्य हे शक्ति-निकर ! जय हो, जय हो, जय हो।

---

* लय—उतरो तम-पथ पर ज्योति किरण

तेरे में अक्षय सत्व भरा ,
तेरे में अव्यय तत्त्व भरा ,
संस्कृति का महा महत्त्व भरा ,
अपनत्व भरा तू श्रुत-परिकर ! जय हो, जय हो, जय हो !

कितने शरणागत तारे हैं ,
कितने जन पार उतारे हैं ,
जितने न व्योम में तारे हैं ,
श्रद्धानत हैं सारे सुर-नर जय हो, जय हो, जय हो।

तू कामधेनु, तू नन्दनवन ,
तू सुर-सरिता, सुर-वृक्ष सघन ,
'तुलसी' का तू ही जीवन-धन ,
अभिनन्दन अभिनन्दन सादर जय हो, जय हो, जय हो।

प्रशस्ति

यह अग्नि-परीक्षा की घटना
सर्वत्र देश में विश्रुत है
उसका साहित्यिक काव्य-रूप
लो सबके सम्मुख प्रस्तुत है
इतिहासों में है रही सदा
गौरवमय भारत की नारी
उसके सतीत्व के मध्यम से ही
चमक उठी रचना सारी

रामायण के है विविध रूप
अनुरूप कथानक ग्रहण किया
निश्छल मन से कलना द्वारा
समुचित भावों को वहन किया
वास्तव में भारत की सस्कृति
है रामायण मे बोल रही
अपने युग के संवादों से
वह ज्ञान-ग्रन्थियां खोल रही

जिसमें सीता का शौर्य भरा
जीवन देता सन्देश नया
आदेश नया, उपदेश नया
नारी-जागृति उन्मेष नया

---

* सहनाणी

महिला के, माता के मिलते
इसमें सीता के युगल रूप,
अपने ही सत्य-शील बल से
निखरा जग में उसका स्वरूप।

चिर आकांक्षित कलित कल्पना आज सफल साकार हुई,
शिक्षा विविध समीक्षामय यह अभिनव कृति तैयार हुई।
मुनि-सतियों की सतत प्रार्थना रह-रह प्रेरित करती थी,
भ्राता[1] की भावुक वाणी उत्साह हृदय में भरती थी।

दोहा

सुन सबकी अभ्यर्थना समुदित किया प्रयास।
द्विशताब्दी का मिल गया अनायास अवकाश।

पश्चिम बग, बिहार से पावन उत्तर-प्रान्त।
माइल युगल सहस्र की साधी यात्रा शान्त।

अकस्मात् ही बीच में मन्त्री[2]-स्वर्ग प्रयाण।
घोर[3] तपस्वी का किया सफल सुफल अभियान।

बीदासर से ली विदा, 'बदना'[4] की विश्वस्त।
विशद सारणा-वारणा कर शासन को स्वस्थ।

समारोह अभिनिष्क्रमण सुधरी में सम्पन्न।
विकट मार्ग मेवाड के देखे परम प्रसन्न।

* रामायण
१. मुनिश्री चम्पालाल जी
२. मंत्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी
३. मुनिश्री सुखलालजी
४. आचार्यश्री तुलसी की माता

यथा समय हो केलवे पहुंचे राजसमन्द ।
संघ चतुष्टय में खिला अनुपम अमितानन्द ।

संख्या श्रमणी श्रमण की दो सौ में कम तीन ।
गुरु-अनुशासन रत सदा शासन में तल्लीन ।

चातुर्मासिक, द्वै मासिक, मासिक महाभद्रोत्तर तप भव्य
तेरापथ की तपः साधना चलती आज अनल्प अलभ्य ।
सारे मेदपाट का अभिनव हुआ एक ही चातुर्मास ,
अणुव्रत आन्दोलन सहवर्ती नये मोड़ का नया विकास ।

तेरापथ की क्रान्ति-भूमि यह जन्म-भूमि मेवाड़ प्रदेश ,
इस शासन के गौरव में रखता है अपना स्थान विशेष ।
यही हुआ शास्त्रों का मंथन, यही मिला निर्णय नवनीत ,
यही पूज्य आचार्य भिक्षु का पनपा तेरापन्थ पुनीत ।

दोहा

स्वय अलौकिक पुरुष थे, दिया अलौकिक तत्त्व ।
क्रान्तिकारकों में रहा उनका बड़ा महत्त्व ।

स्पष्टवादिता में प्रथम, निर्णायक निर्भीक ।
उनकी वाणी सघ में बनी लोह की लीक ।

सबल संगठन-शक्ति के सूत्रधार बेजोड़ ।
जागृति लाने श्रम किया जीवन भर जी तोड़ ।

भारमल, ऋषिराय, जय, मघवा, माणक, डाल ।
श्री कालू करुणा जलधि गण-गोकुल-गोपाल ।

उनके पुण्य प्रताप से सिद्ध सदा सब कार्य ।
है कृतज्ञ श्रद्धा प्रणत 'तुलसी' नवमाचार्य ।

---

* रामायण

इस पावष के प्रथम चरण में यह मासिक कृति है सम्पूर्ण ,
दो हजार सतरह सम्वत भाद्रव कृष्णा नवमी परिपूर्ण ।
दो-दो घण्टा तक रात्रि में रचना का यह प्रथम प्रयोग ,
दृढ विश्वास अटल आत्मा में होगा इसका शुभ उपयोग ।

सोरठा

पन्द्रह पुण्य अगस्त, निशि में साढ़े दस बजे ।
प्रमुदित मन-तन स्वस्थ, हुई सुखद सम्पन्नता ।

दोहा

वर्धमान शासन मुदित, वर्धमान परिणाम ।
वर्धमान साहित्य है, वर्धमान सब काम ।